ISSN : 2321-3922
जुलाई – 2017
BIHHIN05394
वर्ष – 2 अंक–9

सुसंभाव्य

हिंदी त्रैमासिक

www.susambhavya.com

सृजन एवं समीक्षा के लिए प्रतिबद्ध पत्रिका

सुसंभाव्य

(सृजन एवं समीक्षा के लिए प्रतिबद्ध पत्रिका)

जुलाई-सितम्बर–2017

ISSN - 2321-3922
TITLE CODE : BIHHIN05394
वर्ष–3, अंक–9

संस्थापक–सह–प्रधान संपादक
श्री दयानन्द जायसवाल

संयोजक
डॉ. विजय कुमार सिंह

संरक्षक
श्रीमती प्रतिभा सिन्हा

सम्पादक मंडल
डॉ. गिरिजा शंकर मोदी
डॉ. अश्विनी

संस्थापक सदस्य
श्रीमती छाया पाण्डेय
श्रीमती संयुक्ता गुप्ता
डॉ. राम किशोर शर्मा

स्वत्वाधिकारी व प्रकाशक : श्री दयानन्द जायसवाल
संपादन, संचालन, प्रबंधन एवं समस्त
व्यवस्था अवैतनिक एवं अव्यावसायिक ।
रचनाओं के लिए रचनाकार स्वयं उत्तरदायी।
समस्त विवादों का न्याय क्षेत्र
भागलपुर।

सम्पर्क : श्री दयानन्द जायसवाल
मौर्या जुबिली प्लेस, जीरोमाईल
भागलपुर–813210 (बिहार)
मो० : 09931240303, 8210079809
वेबसाईट : www.susambhavya.com
ई–मेल : dnj.sambhavya@gmail.com

ISSN - 2321-3922
TITLE CODE : BIHHIN05394
वर्ष–3, अंक–9

सुसंभाव्य

हिंदी त्रैमासिक

वेबसाईट : www.susambhavya.com

आमंत्रण

'सुसंभाव्य' अंतराष्ट्रीय स्तर की पूर्णत: अमूल्य हिंदी त्रैमासिक है। वर्तमान समय में विश्व के 39 देशों के पाठक सहित भारत के 89 शहरों के सहृदयों का स्नेह इस पत्रिका को प्राप्त है।

इसका ई–संस्करण विश्वग्राम के सभी सुधी पाठकों एवं स्नेहीजन के लिए www.susambhavya.com पर सहजता के साथ सुलभ है। मुद्रित संस्करण यथासंभव रचनाकारों, हिंदी के लिए समर्पित संस्था और संस्थानों को उपलब्ध कराया जाता है।

श्रेष्ठ चिंतन को सहज–सरल अभिव्यक्ति के माध्यम से जब कोई व्यक्ति सार्वभौम होकर जन–गण में व्याप्त हो जाता है तब वह व्यक्ति से व्यक्तित्व और व्यक्तित्व से संस्थान बन जाता है। ऐसे महान विभूतियों से आग्रह है कि अक्टूबर–2017 अंक में प्रकाशन हेतु अपनी मौलिक, नवीनतम एवं प्रतिनिधि रनचाएं अपने पत्राचार–पता के साथ मेल, कोरियार या डाक से सम्पर्क पते पर भेजें।

आइये सब मिलकर सामाजिक सरोकार से संबंधित सार्वभौम, सार्वजनीन एवं श्रेष्ठ साहित्य के माध्यम से धर्म–मज़हब, जाति, लिंग, वर्ण, वर्ग और नस्ल–भेद की दीवार हँटा दें और सिर्फ इंसान बनें तथा उत्तम ज्ञान एवं श्रेष्ठ आचरण से स्वयं का परिष्कार कर विश्वग्राम का सौभाग्य बनें।

रचनाएं भेजें :–
E-mail : dnj.sambhavya@gmail.com

संपादक
सुसंभाव्य हिन्दी त्रैमासिक

सुसंभाव्य

जुलाई–2017

ISSN - 2321-3922
TITLE CODE : BIHHIN05394

अनुक्रम

पुरोवाक्	संस्थापक की कलम से	दयानन्द जायसवाल	05
आलेख	गाँधीजी के विचारों की प्रासंगिकता	अरुण कुमार वर्मा	06
लघुकथा	तैयारी का सच	सत्य शुचि	07
संस्मरण	कवि विमलेश त्रिपाठी की कृति	डॉ मृत्युंजय पाण्डेय	08
आलेख	सुभाषचन्द्र बोस के जीवन का कुछ अप्रतिम अज्ञात पहलू	मनोरंज सहाय सक्सेना	10
कविता	लावारिस कुत्ते	बच्चु चौधरी अकेला	11
आलेख	लोकगीत और देशप्रेम	विजय कुमार मिश्र	12
लघुकथा	निधि	अरिविन्द कुमार मुन्ना	14
आलेख	आर्यों को अनार्यों की देन	विजय वर्धन	15
लघुकथा	गन्तव्य	नरेन्द्र किशोर सिन्हा	16
कहानी	मिलन की एक आस	विणा सिंह	17
कहानी	सच साहब	विद्यालाल	19
कविता	मेरा बच्चा बनाम लोकतंत्र, गज़ल–मैंने तो...	डॉ आशा पुष्प	20
समीक्षा	सामाजिक संघर्ष से युद्ध करती कहानियाँ	डॉ डी.एन. प्रसाद	21
समीक्षा	तू मुझमें धड़कता है	डॉ मीरा श्रीवास्तव	22
कहानी	प्रतीक्षा	डॉ राजेन्द्र सिन्हा	24
दोहा	युवा चेतना	डॉ शरद नारायण खरे	26
कहानी	अपराधी	कुमार शर्मा अनिल	27
कहानी	बगड़ी	डॉ विनय कृष्ण	29
कहानी	दुविधा	प्रो. डॉ अब्दुलवारी साकी	30
कहानी	अंत की शुरूआत या दुखते सुख की मिठास	सुभाष चन्द्र झा	31
कविता	मेरी कविता	उमेश पंडित उत्पल	33
परख	प्रसाद की राष्ट्रीय चेतना...	डॉ हरि दास व्यास	34
कविता	थोड़ा सा अपनापन, जरूरत	कल्पना मिश्रा वाचपेयी, डॉ पंकज साहा	36
गज़ल	कहते हैं ये भी हमारी आन में	डॉ मनाजिर आशिक हरगानवि	36
समीक्षा	रागदरबारी का राग–विराग	डॉ भगवती प्रसाद द्विवेदी	37
समीक्षा	सहरा के फूल : ए.एफ.नज़र	डॉ रामावतार सागर	39
गज़ल	ओ उम्र भर साथ चला, कभी कभी ओठों पर	अनुपम श्रीवास्तव	40
समीक्षा	माखनलाल चतुर्वेदी के काव्य में राष्ट्रीय चेतना	डॉ सुनील कुमार परीट	41
कविता	यादें,	प्रेरणा	42
कविता	तेरी आँखें, हस्ती हिन्द सितारा है, माँ,	डॉ अवधेश चन्दसौलिया, विभा माधवी, विश्वम्भर पाण्डेय	43
गज़ल	आप से रिश्ता रहा, कविता–चिड़िया,	विज्ञानव्रत, महेन्द्र देवांगन माटी	43
गज़ल	जब कभी मामले बड़े होंगे, कविता–खुदा	सुधीर कुमार प्रोग्रामर, छवि निगम	44
कविता	मनुहार, सजा	रविशंकर सिंह, संजय वर्मा दृष्टि	44
कविता	अकेली औरत, इस बुरे दौर में	डॉ अशोक सिंह, मिथिलेश कुमार	45
कविता	मृत्युदंड, बेटी	आर शांता सुन्दरी,	46
गज़ल	देख रहा हूँ हँसते लोग, बाल संसार	संजय कुमार गिरि, निहार रंजन	46
	लोकवाणी		47

पिंजरे का पंछी

फुदकता है आजाद पंछी
हवा की पीठ पर
रुक नहीं जाता जब तक बहाव
तैरता है वह हवा के साथ–साथ
डुबो देता है अपना पंख
सूरज की सुनहरी किरणों में
और दावा करता है आकाश पर अधिकार का
इठलाता हुआ पंछी जब उतरता है
संकरे पिंजरे में तब देख नहीं पाता
बाधक सलाखों को
कट जाते हैं उसके पंख
और बँध जाते हैं पैर
इसलिए गाता है वह गला खोलकर
भय से काँपते हुए स्वर में
गाता है वह गीत अज्ञात चीजों के
अभी भी है वह उनका आकांक्षी
सुनाई देती है उसकी धुन दूर पहाड़ों पर
क्योंकि बन्दी पंछी गाता है गीत आजादी के
हवा के दूसरे झोंके के बारे में
सोचता है आजाद पंछी
आह भरते पेड़ों के बीच से
हौले से बहती है मौसमी हवाएँ
उगते सूरज की धूप से चमकते लॉन में
बाट जोहते हैं मोटे–मोटे पंछी के आगमन की
और वह बताता है स्वयं को आकाश का स्वामी।
बंदी पंछी खड़ा है सपनों के कब्र पर
चीखती है दु:स्वप्न में उसकी छाया
कटे हुए हैं उसके पंख और बँधे हुए हैं पाँव
इसलिए गाता है वह गला खोलकर।

माया एंजेलो
प्रसिद्ध दक्षिण अमरीकी लेखिका व अभिनेत्री

अनु: उमराव सिंह चौधरी, मो. 09826803229

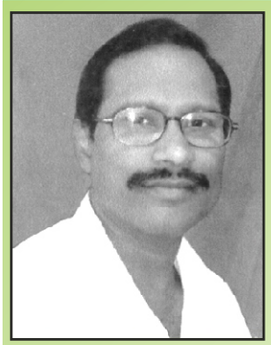

पुरोवाक्

दयानन्द जायसवाल

संस्थापक की कलम से

विचार धोखा दे सकते हैं, परन्तु अनुभूति कभी धोखा नहीं देती है; क्योंकि अनुभूति तो हमारी अपनी होती है, जिसे अपने जीकर पाया है। विचार में हम प्रायः उस बात को मान लेते हैं, जिसे हम मानना चाहते हैं। विचार में कभी–कभी कल्पनाओं की तृप्ति छिपी रहती है। 'आत्मा अमर है, मरती नहीं' इस बात को गीता कहती है, सुनकर बड़ी सान्त्वना मिलती है, तसल्ली मिलती है कि आत्मा अमर है, पर उसकी अमरता की अनुभूति कितनी होती है?हम मन को विचारों की तरंगों से जोड़ लेते हैं, तो विचार आकर्षित होते हैं, खिंचते चले जाते हैं। विचारों की यह शृंखला हमारे लिए कितना महत्त्व रखती है, यह उसकी अनुभूति दर्शाती है। याद होगा एक दिन गाँधी और प्रेमचन्दजी ने हरिजनों को मंदिर में घुसाने के विचारों को क्रान्ति का रूप दिया। जिस दिन हरिजन मंदिर में प्रवेश किये, उस दिन मंदिर के पुजारी की खुशी का ठिकाना नहीं था, इसलिए कि चढ़ावा सब दिन से ज्यादा मिला, अनुभूति का आनंद आज उन सबों को मिला, जिनके विचार साकार हुए और चढ़ावा देखकर उन्हें सबसे ज्यादा खुशी मिली।

एक साहित्यकार केवल अपने अनुभव मात्र पर नहीं निर्भर करता, अपनी उस क्षमता पर ज्यादा निर्भर करता है, जो दूसरों के अनुभव को भी अपना करके महसूस कर सके। वे अपनी निगाह अपने हृदय में डालकर देखते हैं, फिर लिखते हैं अपने को कल्पना द्वारा जितनी भी भिन्न–भिन्न परिस्थितियों में रख सकते हैं, रखकर दुनिया के मनोरथ को सफल करते हैं। ऐसे साहित्यकार कृतियों के पीछे एक अत्यन्त गंभीर, चिंतनशील और सजग बुद्धि कलाकार होते हैं, तभी वो सूक्ष्मता से निरीक्षण और विवेचन कर पाते हैं। हम अच्छी तरह से यह समझ लें कि वही साहित्य और साहित्यकार अप्रासंगिक नहीं होते, जो सामाजिक बुराइयों, अनैतिकताओं अशिक्षा, अंधविश्वास, आर्थिक विषमता, आत्मिक और भौतिक स्तर पर शोषण आदि समस्याओं पर ध्यानाकर्षित करते हैं। मेरी रचना, मेरा साहित्य उस मौलिक प्रवृत्तियों से अभिभूत होकर, जिससे कोई भी साहित्य चिरायु हो सके। कला और कलात्मकता का समय वह होता है, जब घर, समाज, देश, दुनिया सुखी हो; क्योंकि साहित्यकारों को यह सोचना भी है कि साहित्य एक गंभीर सामाजिक जिम्मेदारी है। रचनाकार की वाणी सिर्फ लोगों को खुश करनेवाली नहीं हो, बल्कि दुनिया के आगे मशाल दिखानेवाली सच्चाई है।

आज की लोकप्रिय संस्कृति को कभी किसी बढ़ावे की दरकार नहीं होती, वह अपने आप फैलती है। क्योंकि उसमें प्रबल आकर्षण होता है। परंपरा उसकी गति को कम कर सकती है, पर रोक नहीं सकती। ऐसे में लेखक, कवि, कलाकार नयी–नयी विधाओं और विचारों के साथ नई संस्कृति भी रचते हैं। किसी के लिए घूँघट या बुरके में गठरी बनी पति ओर परिवार से पिटते हुए भी समाज की खातिर यथास्थिति में बने रहनी सांस्कृतिक मूल्य हो सकता है, परन्तु विरोध का परिवर्तन यदि साहित्यकारों से होता है, तो यह प्रगति का सूचक है। जिसका दिल खोलकर स्वागत करना चाहिए। हमारा सामाजिक अभिप्राय जितना व्यापक हो, उतना ही व्यापक हमारी साहित्यिक संस्कृति भी हों।

वैश्वीकरण और नव–उदारीकरण दबाव के इस दौर में अपने को बदलना चाहिए। यूँ तो साहित्य संसार में अधिकांशतः सीमा से हटकर कचरे से भरे हैं, फिर भी हम कहेंगे साहित्य हाशिये पर नहीं है, किन्तु कुछेक लेखक इसे हाशिये पर जाने की दशा बना रहे हैं। इस समय संस्कृति के उपादानों को मापने के पैमाने भी बदलते जा रहे हैं। इस विषम परिस्थिति से नहीं जूझकर लोग अपनी क्षेत्रीयता में सिमटते जा रहे हैं। संस्कृति कोई तालाब नहीं, बहती नदी है, परिवर्तन इसमें भी आये हैं, बीच में संक्रमण काल भी आते हैं, उन्हें आप सांस्कृतिक शून्यता से नहीं जोड़ सकते हैं। साहित्य का सौंदर्यबोध की परिणति भी हमारे आनंद बोध में होती है। इसलिए करुण, भयानक, रौद्र और वीभत्स रसों के साधारणीकरण से हम दुख, भय, विनाश या घृणा पर विचार न करके आनंद के बीच अपनी आत्मा की आनंदानुभूति का अनुभव करते हैं।

'सुसंभाव्य' के रचनाकार समष्टि के हित व सुख का पूरा–पूरा ध्यान रखा है। इन्होंने अपनी क्षमता, उल्लास और साहित्यिक चेतना का उचित उपयोग करते हुए प्रेम और कोमलता, चमत्कारिता और सरलता की भावनाओं से इसे सजाया है। पाठकों के सामने अपनी सशक्त कल्पना–शक्ति को उड़ेल दिया है, ताकि वे इस साहित्यिक अनुभूति को पहचान कर स्मृति का आभास कर सकें। उनकी प्रत्येक अवस्था प्रभावोत्पादक हो सकें और अपने विराट से जुड़ने की अनुभूति प्राप्त कर सकें।

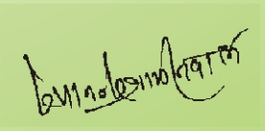

आलेख

गाँधीजी के विचारों की प्रासंगिकता

–अरुण कुमार वर्मा, व्याख्याता (हिन्दी),
जवाहर नवोदय विद्यालय
सिरमौर, मो 9754128757

गाँधीजी का जीवन दर्शन नैतिकता पर आधारित है। उनकी नैतिकता का पथ आध्यात्मिकता से होकर गुजरता है, जिसमें ईश्वर पर विश्वास, आत्मबल की जागृति, आत्मा का उन्नयन तथा परमात्मा से साक्षात्कार का तत्व निहित है। उन्होंने सत्य को ब्रह्म माना है और इस सत्य की खोज के लिए अहिंसा के मार्ग पर चलकर अभ्यास और वैराग्य को ही स्वीकार किया है। उनकी मान्यता है कि अहिंसा के मार्ग पर चलकर अभ्यास और वैराग्य के द्वारा सत्य को पाया जा सकता है। गाँधीजी के सर्वोदय के सिद्धांत को अधिक महत्व दिया। इस सर्वोदय के लिए उन्होंने ट्रस्टीशिप के सिद्धांत को प्रतिपादन किया। इनकी मान्यता थी कि व्यक्ति संपत्ति का ट्रस्टी या संरक्षक है। उसे उस संपत्ति का उपयोग राष्ट्रहित में करना चाहिए। सर्वोदय के इस सिद्धांत को जयप्रकाश नारायण ने 'समग्र क्रान्ति' तथा विनोबा भावे 'भूदान' चलाकर एक नया अर्थ दिया था। गाँधी जी ने साधन की पवित्रता पर बहुत अधिक बल दिया है। उनका विचार था कि बुरे साधनों से अच्छे लक्ष्य नहीं प्राप्त किये जा सकते हैं।

गाँधीजी किसी वाद के अनुयायी नहीं थे। जो कुछ भी उन्होंने लिया प्राचीन भारतीय मूल्यों से और उसी को शाश्वत रूपों पर चलने का प्रयास किया। सत्य, अहिंसा, प्रेम, शान्ति, सहयोग, सहानुभूति प्राचीन भारतीय मूल्य हैं, जिसको उन्होंने अपनाया। व्यासजी ने 'परोपकाराय पुण्याय पापाय परपीडनम्' कहकर पाप और पुण्य की अवधारणा को स्पष्ट किया है। 'अहिंसा परमोधर्मः' कहकर प्राचीन ऋषि–मुनियों ने इसका प्रतिपादन किया है। इन्हीं मूल्यों को गाँधीजी ने अपने जीवन में उतारा है। उन्होंने अपने को किसी वाद का प्रतिपादक नहीं माना। इसका खंडन करते हुए 1936 में 'हरिजन बंधु' में लिखा था–'गाँधीवाद जैसी कोई वस्तु है ही नहीं और मुझे अपने पीछे कोई संप्रदाय नहीं छोड़ जाना है। मैंने कोई नया तत्व या सिद्धांत खोज निकाला है, ऐसा मेरा दावा नहीं है। मैंने तो मात्र जो शाश्वत सत्य है, उन्हें अपने नित्य के जीवन और प्रश्नों से संबंधित करने का अपने ढंग से प्रयास किया है। मैंने जो रायें निश्चित की हैं और जिन निर्णयों पर मैं पहुँचा हूँ, वे अंतिम नहीं हैं। मैं तो कल उन्हें बदल दूँ। मुझे संसार को कोई नई चीज नहीं सिखानी है। सत्य और अहिंसा अनादि काल से चले आ रहे हैं। मैंने तो केवल जितना हो सका, उतनी मात्रा में इन दोनों के प्रयोग किये हैं। ऐसे करते हुए मैंने कितनी बार भूलें की हैं और उन भूलों से मैंने बहुत कुछ सीखा है, इसलिए जीवन और उसके प्रश्नों से मुझे तो सत्य और अहिंसा के आचरण के प्रयोग करने का अवकाश मिल गया है। स्वभाव से मैं सत्यवादी था और अहिंसक नहीं था। सत्य की उपासना करते–करते मुझे अहिंसा हाथ लगी है। मेरा तत्वज्ञान मेरे विचारों के लिए इतने बड़े नाम का अगर उपयोग किया जा सके तो मैंने ऊपर जो कहा है, उतने में आ जाता है। आपलोग इसे गाँधीवाद न कहें। इसमें वाद जैसा कुछ भी नहीं है।'' सत्य, अहिंसा, सेवा, अस्पृश्यता का अभाव, आध्यात्मिकता, देश–सेवा, चारित्रिक दृढ़ता, ध्येय, निष्ठा, साधन की पवित्रता, स्वयं सेवकों का व्रत, ट्रस्टीशिप का सिद्धांत एवं सत्याग्रह जैसे उनके विचार हमारे प्राचीन मूल्यों की परिणति है। उन्होंने तो उसे जीवन में लाने का प्रयास किया है।

गाँधीजी का सत्य सिर्फ वाणी का सत्य नहीं था। वे कहा करते थे कि प्रायः लोग सत्य से यह समझते हैं कि हमको सत्य भाषण करना चाहिए। सत्य केवल वाणी का विषय नहीं है। वाणी के साथ–साथ विचार और कर्म में भी सत्यता होनी चाहिए। राजनीति भी सत्य और अहिंसा पर आधारित होनी चाहिए। गाँधाजी में सेवा का भाव श्रवण कुमार नाटक और सत्य हरिश्चंद्र नाटक से इनके जीवन मूल्य निर्मित हुए हैं। अहिंसा से इनका आशय किसी को शारीरिक एवं मानसिक चोट न पहुँचाने से है और इसी का भावनात्मक अर्थ है चेतनाशील वेदना। अहिंसा के लिए निडर होना महत्वपूर्ण है। यही निर्भीकता का गुण सत्याग्रह के लिए प्रेरित करेगा अर्थात् सत्य पर अटल रहना सिखाएगा। इसी सत्याग्रह से वे सामाजिक और राजनीतिक बुराइयों को दूर करना चाहते थे। वे कहा करते थे–मैं मरने की अपेक्षा मरने का साहस रखता हूँ। यदि भीरुता और हिंसा में चुनाव करना हो तो मैं हिंसा को ही स्वीकार करूँगा। वे शान्ति के लिए तलवार नहीं, आत्मबल से इसकी स्थापना करना चाहते थे। उन्होंने लिखा है–'मैं अत्याचारी तलवार की धार को पूरी तरह कुंठित करना चाहता हूँ। इसके विरोध में एक अधिक तेज शस्त्र को रखकर नहीं, किन्तु उसकी इस आशा को कि मैं उसका शारीरिक प्रतिशोध करूँगा, निराशा में बदलकर।

गाँधीजी सादगी प्रिय व्यक्ति थे। वे स्वयं सादगी से रहते थे और तभी लोगों को सादगी से रहने की सलाह देते थे। आज कितने लोग हैं, जो उतनी सादगी से रहना चाहेंगे?उनकी मान्यता थी कि यदि फैशन का भूत हमारे समाज से उतर जाए तो सभी में नैतिकता आ जाए। तमाम राष्ट्रीय व्यय भार बच जाए। गाँधीजी विकास के पक्ष में थे, परन्तु मशीनीकरण के दोष से भी परिचित थे। वे यंत्रों के प्रयोग को वहाँ तक सही मानते थे, जहाँ तक मनुष्य को गुलाम न बना दे और उसके शोषण का साधन न बन जाए। उन्होंने शिक्षा को चित्त की शुद्धि का साधन माना है। वे लिखते हैं–''जो चित्त की शुद्धि न कर निर्वाह का साधन बनाए तथा स्वतंत्र रहने का हौसला और सामर्थ्य न उपजाए, उस शिक्षा को चित्त की शुद्धि का साधन माना है। वे लिखते हैं–''जो शिक्षा चित्त की शुद्धि न कर निर्वाह का साधन बनाए और स्वतंत्र रहने का हौसला और सामर्थ्य न उपजाए, उस शिक्षा में चाहे कितनी जानकारी का खजाना, तार्किक कुशलता और भाषा पांडित्य मौजूद हो, वह सच्ची शिक्षा नहीं है।'' शिक्षा में श्रम की अनिवार्यता के द्वारा श्रम को आध्यात्मिक और नैतिक महत्व प्रदान किया है। वे युवाओं को गीता के निष्काम कर्म से साक्षात्कार कराना चाहते थे।

गाँधाजी दूरदर्शी दृष्टि रखते थे। इन्होंने देश को बहुत नजदीक से देखा था। वे विकास में स्थायित्व के स्वरूप को महत्व देते थे। आज जिस तरह से राजनीति में 'स्व' की राजनीति का बोलवाला है। युवाओं में कर्म के प्रति उपेक्षात्मक भाव बढ़ रहा है। सादगी और त्याग के स्थान पर दिखावे की प्रवृत्ति बढ़ रही है। सत्य और अहिंसा सिर्फ संभाषण की वस्तु रह गयी है। धार्मिक उन्माद चरम पर है। ऐसे में गाँधीजी के विचारों की महती आवश्यकता है। गाँधीजी की कथनी और करनी में भेद नहीं था। वे हर बात को अपने पर ढालकर देखते थे, फिर उसे जनता तक लाते थे। आज इसका अभाव है। पर उपदेशक की संख्या बढ़ती जा रही है। गाँधीजी की बात को जनता अभियान की तरह स्वीकार करती थी, परन्तु वर्तमान में अभियान, आत्म–प्रचार का जरिया बना हुआ है।

गाँधी विचारधारा के विरोधी स्वर भी हैं। उसे मानने से लोग कतराने लगे हैं। इसका कारण यह है कि उसपर चलना आसान नहीं है। वह तो तलवार की धार पर धावकों जैसा है, परन्तु वर्तमान में यदि उसका कुछ अंश भी पालन किया है, तो जनता उसका साथ दी है। अन्ना हजारे जिसका जीता जागता उदाहरण है। देहबल पर जिस आत्मबल की स्थापना वे करना चाहते थे, वह

असहाय और कमजोर वर्ग की सबसे बड़ी पूजा है। किसी भी समाज या देश में जब भी बाहुबल बढ़ेगा, आत्मबल की पराजय ही उसका सबसे बड़ा लक्ष्य होगा। जिसके राज्य में कभी सूर्य का अस्त नहीं होता था। ऐसे बाहुबली को इन्होंने आत्मबल से निकाल भगाया। भारत के अलावा दूसरा कोई भी देश अहिंसात्मक युद्ध से आजाद नहीं हुआ है। युद्ध विभीषिका से इतिहास भरा पड़ा है। शांति के लिए युद्ध का विचार इनको प्राप्त कैसे हुआ, इसके उत्तर में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं–'हमारे देश के ऊपर से जो यह मारकाट, अग्निदाह, लूटपाट, खून–खच्चर का बवंडर बह गया है, उसके भीतर भी क्या स्थिर रहा जा सकता है?शिरीष रह सका है। अपने देश का एक बूढ़ा रह सका था। क्यों मेरा मन पूछता है कि ऐसा क्यों संभव हुआ है?क्योंकि शिरीष भी अवधूत है। शिरीष वायुमंडल से रस खींचकर इतना कोमल और कठोर है। गाँधीजी वायुमंडल से रस खींचकर इतना कोमल और इतना कठोर हो सका था। मैं जब–जब शिरीष की ओर देखता हूँ, तबतब हूक उठती है, हाय! वह अवधूत आज कहाँ है?

'चल पड़े जिधर मार्ग में डग द्वै, चल पड़े उसी ओर कोटि पद' इस अवधारणा पड़ताल वर्तमान की आवश्यकता है। जिस नेतृत्व क्षमता का गुण गाँधीजी में था, उसकी स्थापना आज तक की आवश्यकता है। वर्तमान राजनीति को गाँधीजी के विचारों की महती आवश्यकता है। वर्तमान राजनीति में जिस तरह से स्व का बोलवाला है, उससे उबरने के लिए गाँधीजी के त्याग और नैतिकता की आवश्यकता है। वर्तमान शिक्षा जिस तरह से शिक्षा और कार्य के बीच एक विभेदक रेखा खींच रही है। इससे काम न करनेवालों समाज का समाज में एक वर्ग बन रहा है, जो खुद का समाज का संभ्रान्त मानने लगा है। जिस तरह से राष्ट्रीयता और नैतिक मूल्यों का ह्रास हो रहा है। देश की प्रतिभाओं का विदेशों में तथा गाँव से शहर को पलायन हो रहा है। इन सबका निदान गाँधीजी के विचारों का पोषण ही है। निश्चित ही उनके विचार आज की प्रासंगिता है और भविष्य में भी रहेंगे।

लघुकथा

तैयारी का सच

सत्य शुचि
ब्यावर (राजस्थान)
मो0 9413685820

इंटरव्यू के रोज वह असहज–सा था और वह एक अनजानी घबराहट से पसीने–पसीने हो चला, लेकिन जब उसका इंटरव्यू सफलतापूर्वक हो गया, तभी उसके चेहरे पर एक मुस्कुराहट छितर आई और शीघ्र ही उसका भय भी जाता रहा।

'इंटरव्यू' वह बुदबुदाया था, कैसा इंटरव्यू?फकत नाम ही तो उससे पूछा गया था इंटरव्यू में।

मगर किंचित् लम्हों से ही विगत दिनों का एक दृश्य उसकी चेतना में कौंध उठा, उसे लगा इंटरव्यू उसका नहीं, बल्कि घरवालों की तैयारी का था, जिसमें वह सफल हुए और फिर आज के संदर्भ में किसी भी काम के लिए तैयारी एक तरह से सफलता की गारंटी जैसे ही होती है।

अब उसे नियुक्ति पत्र का इंतजार था और शायद नियुक्ति पत्र के निमित्त भी घरवालों की एक तैयारी और करनी पड़ जाए। उसने तनिक सोचा था।

लघुकथा : बाजी
–सविता मिश्रा

वाह भई, कलम के सिपाही आज भी मौजूद हैं। पीडब्लयू डी के चीफ इंजीनियर साहब ने पत्रकार पर चुटकी ली। 'काहे के सिपाही। कलम तो आप सबके हाथ में है, जैसे चाहे घुमायें।' पत्रकार सबकी तरफ देखता हुआ बोला।

पर पत्रकार भाई! आजकल तो आपकी ही कलम का है। आपकी कलम चलते ही सब घूम जाते हैं। फिर तो उन्हें ऊँच नीच कुछ नहीं समझ आता है। आपकी कलम का तोड़ खोजने के लिए जो बन पड़ता है, हम सब वो कर गुजरते हैं। डॉक्टर साहब व्यंग्य करते हुए बोल उठे।

सही कह रहे हो आप सब। वैसे हम सब एक ही तालाब के मगरमच्छ हैं। एक दूजे का ख्याल रखें तो अच्छ होगा। वरना लोग लाठी डंडे लेकर खोंपड़ी फोड़ने पर आमदा हो जाते हैं। लेखपाल ने बात आगे बढ़ाई।

पर ये ताकतवर कलम, हमतक नहीं पहुँच पाती है। ठहाका मारते हुए बैंक मैनेजर बोला।

क्यों, आप कोई दूध के धुले तो नहीं है?गाँव का प्रधान बोला।

अरे, कौन मूर्ख कहता है हम दूध के धुले हैं। पर काम ऐसा है जल्दी किसी को समझ नहीं आता है हमारा खेल। फिर जोर से ठहाका ऐसे भरा जैसे इसका दंभ था उन्हें। सारी नालियाँ जैसे बड़े परनाले से मिलती हैं, वैसे ही विधायक महोदय के आते ही सब उनसे मिलने उनके नजदीक जा पहुँचे।

नेताजी मेरे कॉलेज को मान्यता दिलवा दीजिए, बड़ी मेहरबानी होगी आपकी। कॉलेज संचालक विनती करते हुए बोला।

बिल्कुल कल आ जाइए हमारे आवास पर। मिल बैठकर बात करते हैं। विधायक जी बोले।

क्यों ठेकेदार साहब, आप काहे छुप रहे हैं। अरे मियाँ, यह कैसा पुल बनवाये, चार दिन भी न टिक सका। इतने कम कीमत में तो मैंने तुम्हारा टैंडर पास करवा दिया था, फिर भी तुमने तो कुछ ज्यादा ही...।

नेताजी! आगे से ख्याल रखूँगा। गलती हो गयी, माफ करियेगा। हाथ जोड़ते हुए ठेकेदार बोला।

विधायक जी ठेकेदार को छोड़ दूसरी तरफ मुखातिब हुए। अरे एसएसपी साहब! आप भी थोड़ा... सुन रहे हैं सरेआम खेल खेल रहे हैं। आप हमारा ध्यान रखेंगे, तो ही हम आपका रख पायेंगे। विधायक साहब कान के पास बोले।

जी सर! पर इस दंगे की तलवार से मेरा सिर कटने से बचा लीजिए। दामन पर दाग नहीं लगना चाहिए। आगे से मैं आपका पूरा ख्याल रखूँगा। साथ में डीएम साहब भी हाथ जोड़े खड़े थे। सुनकर नेताजी मुस्करा उठे।

सारे लोगों से मिलने के पश्चात् उनके चेहरे की चमक बढ़ गई थी। दो साल पहले तक जो अपनी छठी कक्षा में फेल होने का अफसोस करता था। आज अपने आगे–पीछे बड़े–बड़े पदासीन को हाथ बाँधे घूमते देख गर्व से फूला नहीं समा रहा था।

तभी सभाकक्ष के दरवाजे पर खड़ा हुआ एक नौजवान सबसे मुखातिब हुआ। उसने विनम्रता से कहा–मैं एक किसान का बेटा हूँ, जिसको पढ़ाई करवाते–करवाते पिता कर्ज से दबकर आत्महत्या कर बैठे। परिवार का पेट भरने के लिए मुझे चपरासी की नौकरी करनी पड़ रही है। पर मुझे आज समझ आया कि मेरे पिता की आत्महत्या और मेरे परिवार की ऐसी स्थिति लाने में आप सबका हाथ है। आपका कच्चा चिट्ठा मेरे पास है।

बाजी पलट चुकी थी। विधायक से लेकर ठेकेदार तक, सब एक दूसरे का मुँह ताक रहे थे।

संस्मरण

कवि विमलेश त्रिपाठी की कृति

—डॉ. मृत्युंजय पाण्डेय,
हावड़ा, 9681510596

समकालीन युवा कवि विमलेश त्रिपाठी का जुड़ाव जन्मभूमि हरनाथपुर (बिहार) से बहुत गहरा है। कोलकाता महानगर में रहते हुए भी इनसे उनका गाँव, वहाँ के लोग नहीं बिसरते। अब तक इनके तीन काव्य–संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। पहला–'हम बचे रहेंगे' (2011), दूसरा–'एक देश और मरे हुए लोग' (2013) और तीसरा–'उजली मुस्कुराहटों के बीच' (प्रेम कविताएँ, 2015)। सदी के सबसे बड़े आलोचक डॉ. नामवर सिंह इस युवा कवि पर टिप्पणी करते हुए कहते हैं–'विमलेश आत्मचेतस तथा आत्मसजग के साथ ही गहरे दायित्वबोध के कवि हैं। उनकी भाषा में आए उनकी जमीन के शब्द उन्हें नागार्जुन और रेणु आदि रचनाकारों से जोड़ते हैं। यह बहुत जागरुक और प्रबुद्ध कवि हैं।' ('एक देश और मरे हुए लोग' कविता पुस्तक के कवर पृष्ठ से) कवि विमलेश एक साथ गाँव और शहर दोनों के कवि हैं।

कवि विमलेश त्रिपाठी अपने आसपास की छोटी–छोटी चीजों से अपनी कविता का संसार रचते हैं। वे सदियों से उपेक्षित आम आदमी के प्रति प्रतिबद्ध दिखते हैं। वे 'किसान पिता की भूखी आँत', 'बहन की सूनी माँग', 'छोटे भाई की बेरोजगारी' और 'माँ और सूजी हुई आँखों' के कारण की पड़ताल करते हैं। चमचमाती रंगीन महानगर की दुनिया में रहते हुए भी कवि की चेतना में पिता, माँ, बहन, भाई के साथ किसान, मजदूर और खेत–खलिहान सहित चिरई–चिरुंग के लिए भरपूर जगह बची हुई है।

एक कविता है 'सपना'। इस कविता को एक दूसरी कविता 'कविता से लंबी उदासी' से जोड़कर पढ़ने से कविता का अर्थ बृहद् हो जाता है। 'सपना' कविता में हम देखते हैं कि कवि के गाँव से चिट्ठी आई है। उस चिट्ठी में 'गिरवी रखे गये' खेत का जिक्र और फिक्र है। खेत गिरवी रखने के बाद भी किसान पिता की तकलीफ कम नहीं होती। पिता की भूखी आँत तक अन्न की सुगंध नहीं पहुँच पाती, माँ की आँखों से टपकते आँसू नहीं थम पाते, बेरोजगार भाई आत्महत्या कर लेता है और बहन एक औरत से 'धर्मशाला में तब्दील हो जाती है। कवि के ही शब्दों में सुनिये–

कविता में जितनी बार लिखता हूँ आसमान
उतनी ही बार टपकते हैं माँ के आँसू
उतनी ही बार पिता की आँत रोटी–रोटी चिल्लाती है
जीतने समय में लिखता हूँ एक शब्द
उससे कम समय में
मेरा बेरोजगार भाई आत्महत्या कर लेता है
उससे भी कम समय में
बहन 'औरत में धर्मशाला' में तब्दील हो जाती है
(कविता की लंबी उदासी, हम बचे रहेंगे, पृ. 16)

यह सब नहीं रोक पाना उसके लिए किसी विषाद से कम नहीं। इसलिए वह सबसे 'क्षमा' माँगता है। युवा कवि विमलेश त्रिपाठी की कविता आदमी के दुख से दुखी और उदासी से उदास हो जाती है।

'सपना' कविता पर आयें। एक तरफ गाँव से चिट्ठी आयी है और दूसरी तरफ शहर में कमानेवाला किसान पिता का बेटा अपनी सारी कोशिश के बावजूद भी गिरवी रखे खेत को नहीं छुड़ा पाता, नहीं लौटा पाता फिरौती की रकम। वह अपनी आँखों से यह देखना चाहता है कि उसके पिता अपने कंधों पर हल लादे हुए खेत की तरफ जा रहे हैं। पर यह दृश्य यथार्थ में नहीं, बल्कि सपनों में देखता है। वह नहीं देख पाता अपनी धरती को हरा–भरा। सबसे बड़ा दुःख यह कि फिरौती न लौटा पाने की वजह से वह गाँव भी नहीं जा पाता। वह शहर में अकेला जूझता रहता है, अपने आपसे, अपने सपनों से। जिसे लेकर वह गाँव से चला था, जो बिला गये हैं शहर की गलियों में। यह सच्चाई है हमारे लोक की जिसे कवि ने बहुत ही बारीकी से दिखाया है।

कवि महानगर में रहते हुए भी अपने बस्ते में 'गंवई धूल की सौंधी गंध' छुपाए हुए चलता है। आपको याद होगा कवि केदारनाथ सिंह की भी यह कोशिश है कि महानगर में रहते हुए उनके शरीर और आत्मा पर गाँव की जरा–सी धूल बची रहे। आखिर यही तो हमारी पहचान है। महानगर की दूषित हवा में रहते हुए भी कवि विमलेश अपने फेफड़ों में गाँव की स्वच्छ, सुंदर और प्रांजल हवा को बाँधे हुए जीते हैं। उनसे उनका बरगद का वह पेड़ नहीं बिसरता, जिसके नीचे बैठकर वे अपनी तोतली जबान में दुहराते थे–

एक दूना दो
दो दूना चार
चार नवा छतीस।
(गनीमत है अनगराहित भाई, हम बचे रहेंगे, पृ. 52)

कवि के लिए शहर किसी विषाद से कम नहीं है। इस चमकती दुनिया में उसके मासूम सपने उसके हाथों से लगातार फिसलते जा रहे हैं। लोक से इतनी दूर रहने के बाद भी घर के खपरैल से उठती हुई एक उदास कराह उसे लगातार बेचैन करती है। उसे गाँव की फाग तथा विदेशिया नाच की याद सताती है।

विमलेश की कविताओं में कबड्डी, चीका, गुल्ली–डंडा तथा छुआछूत के खेल खेलते बेतहाशा भागते छुपते–छुपाते शरारती बच्चों की टोलियों के अलावा–

दवनी करते बकुली बाबा
और खलिहान में रबी की लाटें
और घास चरती बकरियों से
बतियाती बांगटी बुढ़िया
और ढील हेरती औरतें
और खईनी मलते चइता तान में
मगन दुलारचन काका
(जब कुछ भी शेष नहीं रहता सोचने को)

जैसे लोगों के लिए प्रमुख स्थान है। ये लोग कवि के गहरी स्मृति में बसे हुए हैं। हम देख सकते हैं कि इस असंवेदनशील समय में, कवि के हृदय की कोख में संवेदना के बीज अभी भी शेष हैं। कविता की इस चंद पंक्तियों में लोक के अनेक शब्द हैं। बिना किसी हीनताबोध के कवि इन शब्दों का इस्तेमाल करता है। 'बंगटी बुढ़िया' की तरह कवि विमलेश त्रिपाठी भी अपने पाठकों से बतियाते हुए चलते हैं और पाठक कविता पढ़ते–पढ़ते दुलारचन काका की तरह मगन हो जाता है। इस कविता में एक चीज विशेष ध्यान देने की यह है कि कवि गुल्ली–डंडा और छुआछूत का खेल 'सुरजा चमार' के साथ खेलता है।

कवि पूरे साहस और विश्वास के साथ 'बासन, खड़खड़ाहट, चड़ता खलिहान, चिरई–चिरुंग, खपरैल, रोआईन पराईन, बीहड़, बिअहुति, ढील, होरी, खोईंछा, मसखरा, शुकवा, हहर, मुंडेर, फदगुदिया, पंचपाइसी,

गोलियामिठाई, नीमकौड़ी, हुंकारी, नुकारी, बकुली, लेवा, खूँटी, पपड़ाया, दसबजिया, जादो, भुसौल, चिरकुट, पियराया, दढ़ियल, सतुआन, जैसे भोजपुरी शब्दों का प्रयोग करता है। लगता है कि जैसे कवि कविता के बहाने 'शब्दों को बचाने की लड़ाई लड़ रहा है।' अनेक जगह कवि ने लोक–प्रचलित कहावतों और कुछ पंक्तियों का इस्तेमाल भी किया है। उदाहरण के लिए कुछ नमूना देखिए–

1. आन्ही बुनी आवेले–चिरैया ढोल बजावेले (बारिश)

2. कितना पानी घोघो रानी (जब कुछ भी शेष नहीं रहता सोचने को)

3. घुघुआ मामा, आइस पाइस (ओझा बाबा को याद कराते हुए)

4. कथा गइल वन में–सोचो अपने मन में (कथा)

5. चार डेढ़े छव (गनीमत है अनगराहित भाई)

इतना ही नहीं, लोक में प्रचलित 'तोता मैना' की लोक कथा के सहारे कवि अपनी 'कथा' शीर्षक कविता की रचना करता है। इस कविता में कवि नहीं बल्कि तोता मैना से रामधानी नामक शख्स की कथा कहता है। तोता मैना से यह बताता है कि शहर में 'पंचफेड़वा' गाँव का वह व्यक्ति एक ऐसी जगह की तलाश में है–

जहाँ गाड़ सके गाँव से आई बैरन चिट्ठियाँ
और साथ उसके आए
किसान पिता की कराह माँ की आँखों का धुँआ
पत्नी का एकान्त विलाप
और ग्राइप वाटर की खाली शिशियाँ
स्मृति में बचे रह गये पवित्र मंत्रों की तरह

पर 'एक दिन रात हफ्तों महीनों वर्षों दशकों' भटकने के बाद भी उसे एक अदद पवित्र जगह नहीं मिलती यानी इन सब के लिए या इन भावनाओं के लिए यहाँ कोई जगह नहीं।

कवि विमलेश त्रिपाठी के यहाँ लोक में प्रचलित एकादशी व्रत, सतुआन, कार्तिक स्नान और गोधन पर्व को भी जगह मिला है। गोधन पर्व से संबंधित 'बहनें' कविता की कुछ पंक्तियाँ देखिये–

रेंगनी के कांटे
हर बार चुभाती है अपनी जीभ में
कूटती हैं गोधन
बनाती हैं पीठा
पीडिया लगाती हैं
गीत गाती हैं पता नहीं कितने पुराने
(बहनें,एक देश और मरे हुए लोग, पृ. 38–39)

'एक छोटी–सी' किसान कविता के माध्यम से कवि संपूर्ण किसानों की दशा को बखूबी बता जाता है। कवि लिखता है–

गेहूँ की लहलहाती
बालियों के बीच
यह खड़ा है
सरसों के फूल की तरह
एकदम पियराया हुआ

मात्रा पाँच पंक्तियों की कविता किसानों की पीढ़ी–दर– पीढ़ी के हालात को बयां कर जाती है। गेहूँ की फसल जिसके बदौलत लहलहा रही है, वही सरसों के फूल की तरह पियराया हुआ है। यही सच्चाई है हमारे अन्नदाताओं की। कई सदियाँ बीत गईं, पर उनके चेहरे का पीलापन दूर नहीं हुआ।

'कुम्हार के चाक भूख भैरवी और एक प्रश्न' कविता में कवि लोक की एक और सच्चाई से हमें रू–ब–रू करता है। एक कुम्हार 'रोटी' के सपने को, पत्नी की बिसूरती आँखों में छोड़कर ओर भूख को, जनमतुआ के पेट में बिलबिलाता हुआ' छोड़कर यहाँ शहर में एकान्त आ बैठा है। 'रोटी' का इंतजार सबको है। रोटी की वजह से ही वह अपने जनमते बच्चे से दूर हो जाता है। समय के भूखे पेट में कुम्हार, कुम्हार की पत्नी, उसका जन्मा बच्चा, उसकी चाक और इन सबके साथ नाचते चाक की लय पर गायी जानेवाली सुरीली आदिम गीत बिला जाएँगी। कुम्हार के माध्यम से गंगिया माई के बहाने कवि हम सबसे यह प्रश्न करता है–

कि कैसे बाजरे की रोटी
और प्याज की एक फारी के बिना
सदियाँ रह लेते थे साधु महात्मा इस गरीब देश के
(कुम्हार का चाक भूख भैरवी और एक प्रश्न)

आदमी बनने और रोटी के जुगाड़ में गाँव छोड़ शहर में अपने के बाद, गाँव में अब सिर्फ बूढ़े और पागल ही रह गये हैं। बूढ़े मजबूरी में है और जो थोड़–बहुत नौजवान रह गये हैं, उन्हें पागल ही समझा जा रहा है। गाँव के सारे जवान रोटी की खोज में दिल्ली, सूरत, मुंबई और कोलकाता जैसे शहरों में बिला गये हैं और स्त्रियाँ गाँव की चौखट पर बैठी राह अगोरती रहती हैं, अपने परदेशी पिया की। कवि कहता है नौजवानों के चले जाने से–

सूखते जा रहे हैं पेड़
खेत परती में बदलते जा रहे
नदी से उठ रहे बालू के टीले
बहुत पुरानी एक ढोलक जिसे छोटका बाबा बजाते थे
वह नंगी पड़ी है उतर गया उसके देह का चमड़ा
इतना ही नहीं, इनके चले जाने के बाद अब–
हर दोपहर होता जाता है कुछ इस तरह उदास
जैसे मर गया हो अपना कोई बेहद आत्मीय
(इस तरह में, एक देश और मरे हुए लोग, पृ. 30)

आज गाँव की दोपहरी नीरस कटती है। धीरे–धीरे शहर की धूल गाँव में फैल चुकी है। आज भारतीय गाँव एक बीमार बूढ़ा व्यक्ति की तरह हाँफ रहा है। हर क्षण उसकी साँस उखरती जा रही है। वह कभी भी दम तोड़ सकता है। समय के बवंडर में गाँव लहूलुहान हो चला है। अंधेरे में डूबा हुआ गाँव, किसी अपराधी की भाँति सजा भोग रहा है।

विमलेश त्रिपाठी का गाँव विस्मृतियाँ में बसा है। बचपन के दिन की सुनहली यादें उन्हें कचोटती रहती है। वे शहर में रहते हुए स्मृतियों के सहारे गाँव की सैर करते हैं। ये महानगर में गाँव की जमीन का एक टुकड़ा उठाकर उसपर नीम, धान, गेहूँ, अमलतास और अपने नन्हें–नन्हें सपनों को रोपते हैं। ये अपनी संस्कृति, परंपरा, इतिहास, अस्तित्व और निजी पहचान को लेकर बेहद चिंतित है।

आलेख

सुभाषचन्द्र बोस के जीवन का कुछ अप्रतिम अज्ञात पहलू

मनोरंजन सहाय सक्सेना
जयपुर, राजस्थान
9351288071

श्रीसुभाषचन्द्र बोस के बारे में आजतक काफी कुछ कहा और लिखा जा चुका है, किन्तु हाल ही में हिन्दी की सभी विधाओं में एक सशक्त हस्ताक्षर, एक युग प्रवर्तक तथा साहित्यिक पत्रकारिता के क्षेत्र में धर्मयुग जैसी कालजयी पत्रिका का संपादन कर पत्रकारिता का नया आयाम स्थापित करनेवाले श्रीधर्मवीर भारती की साहित्यिक यात्रा की अनुपम सहचरी श्रीमती पुष्पा भारती ने अपने एक लेख–''जब सुभाष ने फहराया तिरंगा'' में इस अप्रतिम व्यक्ति के बारे में जो उद्‌गार प्रकट किये हैं, वह भूतो न भविष्यति की श्रेणी में आते हैं। श्रीमती पुष्पाजी का कथन है कि 'सुभाष'–यह नाम ऐसा भारतीय इतिहास का स्वर्णिम पृष्ठ है, जिससे एक सशक्त जननायक और स्वप्नदर्शी राजनायक के साथ साथ युग को एक खास रंग देनेवाली महक उठती है। कितना पवित्र था 30 दिसम्बर, 1943 का वह दिन जब सुभाष ने अंग्रेज शासन से मुक्त कराये भारत की धरती के उस टुकड़े पर अपनी स्वतंत्र स्थायी सरकार की ओर से पोर्ट ब्लेयर में अपना प्यारा तिरंगा फहराया था। मातृभूमि के इस टुकड़े की तरह पूरी की पूरी मातृभूमि की आजादी का सूर्य उन्हें दिखाई दे रहा होगा। स्वप्नदर्शी सुभाष ने बड़े शौक से और बड़े प्यार के साथ इन दोनों को नया नाम दिया था उस दिन। नाम रखे थे–'शहीद द्वीप' और 'स्वराज द्वीप'। हमारी आजादी की जयन्तियाँ हर वर्ष जोर शोर से मनाई जाती रही है और वर्ष 2007 में तो षष्ठिपूर्ति बड़े शौक और जोश से मनाई गई थी, मगर हमारी देश की आजादी के इतिहास में इस सच्चे और स्वर्णिम पृष्ठ की ओर कभी किसी का ध्यान ही नहीं गया। कहीं इतिहास की किताब में इसका उल्लेख नहीं किया जाता।

श्रीमती भारती जी के कथन से यह सिद्ध होता है कि अभी तक भारत में अंग्रेज इतिहासकारों द्वारा उनकी सुविधानुसार लिखे गये और पश्चात् उन्हीं के कथन के आधार पर अंग्रेजों के प्रति भक्ति भावना रखनेवाले समाज के अग्रणी समाजनायकों ने भी इतिहास को इन्हीं भ्रामक तथ्यों के आधार पर लिखना जारी रखा, जिसे आज भी स्वतंत्र भारत में राजनैतिक स्वतंत्रता के 68 साल बाद भी स्वतंत्र भारत में पैदा हुई भारतीयों की चौथी पीढ़ी पाठ्यक्रम में पढ़ने को अभिशप्त है। कुछ समय पहले 2015 के साल में ही प्रदर्शित फिल्म 'हैदर' में भी इसी तथ्य को प्रकाशित किया गया है।

इस प्रसंग में उनके इस लेख में श्रीमती भारती उल्लिखित यह अंश बेहद महत्वपूर्ण है कि सुभाष को जब यह ज्ञात हुआ कि जापान से लड़ते हुए अंग्रेज भारत का एक टुकड़ा (अंडमान निकोबार) जापान को सौंपकर भाग खड़े हुए हैं। तो सुभाष ने तुरंत जापान के प्रधानमंत्री से संपर्क साधा और कहा कि हम और आप एक साथ मिलकर अंग्रेजों से युद्ध कर रहे हैं। अब चूँकि उन्हें अंडमान निकोबार से भगा दिया गया है, तो अब हमारी भारतीय धरती का यह प्रदेश आप हमें सौंप दें, तो हमारी आगे की लड़ाई थोड़ी आसान हो जाएगी। सुभाष ने अपना यह दाबा इतने तर्कपूर्ण और प्रभावशाली ढंग रखा कि 6 नवम्बर, 1943 को बृहत्तर पूर्वी एशियाई सम्मेलन में यह प्रस्ताव पेश किया गया और 8 नवम्बर को अंडमान निकोबार को स्वतंत्र घोषित करके आजाद हिन्द फौज को अनुरोध किया गया कि वह इसे अपने अधिकार में ले ले।

यह श्री सुभाष की कूटनीतिक और संगठन क्षमता से पूर्ण व्यक्तित्व की सफलता थी कि मात्र दो दिन में वह एक अंतर्राष्ट्रीय मंच पर केवल अपने व्यक्तित्व के आधार पर सिर्फ स्वघोषित अस्थायी सरकार के प्रमुख के रूप में न केवल अपनी बात मनवाकर एक विशाल भूखंड वापिस प्राप्त करने में सफल हुए, बल्कि उसपर अपरोक्ष रूप से श्रीसुभाष की अस्थायी स्वतंत्र भारतीय सरकार की सार्वभौमिकता को भी अंतर्राष्ट्रीय मान्यता प्रदान करवाने में सफल हुए, जबकि भारत की राजनैतिक स्वतंत्रता 68 साल बाद भी सर्वप्रभुता सम्पन्न भारत सरकार अपने ही देश से अलग हुए पाकिस्तान से कश्मीर की भूमि भारत सरकार न तो आजतक वापिस प्राप्त कर सकी है, न ही इस विषय पर अंतर्राष्ट्रीय समर्थन जुटा सकी है। इसमें से आधी शताब्दी से अधिक तो गाँधीजी के मानसपुत्र के वर्चस्व वाला राजनैतिक दल सत्तारूढ़ रहा है। इसका कारण आज के राजनीतिज्ञों में श्रीसुभाष जैसी दृढ़ इच्छा शक्ति देशप्रेम की निस्वार्थ प्रेम तथा राष्ट्रीय भावना का पूरी तरह अभाव है।

इस लेख में पुष्पाजी ने आगे व्यक्त किया है कि श्रीसुभाष ने स्वतंत्र और अस्थायी सरकार गठन के ऐतिहासिक अवसर पर घोषणा की–''ईश्वर को साक्षी मानकर मैं भारत और अपने अंतिम साँस तक इस पवित्र लड़ाई को जारी रखूँगा। अपने अड़तीस करोड़ भारतीय भाइयों और बहनों का कल्याण मेरा सबसे अहम कर्तव्य होगा। आजादी के बाद भी मैं अपने खून का एक–एक कतरा स्वतंत्रता के संरक्षण के लिए देने को तत्पर रहूँगा।''

कुछ इसी तरह के शपथ स्वतंत्र भारत की जनता के मत प्राप्त कर विधायक, सांसद और मंत्री बने जनप्रतिनिधि स्वतंत्र भारत में रहनेवाले सभी भारतीय भाइयों और बहनों का कल्याण उनका अहम कर्तव्य मानते हुए देश से गरीबी, अशिक्षा और भूखमरी हटाने के लिए हर पाँच साल बाद आवाज उठाते हैं, मगर गरीबी और भूखमरी नहीं हटा पाने के कारण में, तो कई प्राकृतिक–अप्राकृतिक आपदायें और बढ़ती जनसंख्या आदि अनेक कारण बता दिये जाते हैं, मगर अशिक्षा के विषय तो स्थिति यह है कि स्वतंत्र भारत के 68 साल बाद देश के एक राज्य में पंचायत और स्थानीय प्रशासन लोक प्रशासन संस्थाओं में चुनाव के प्रत्याशी के लिए न्यूनतम शिक्षित होने की आज्ञा पत्र जारी होने पर और संबंधित राज्य से उच्च न्यायालय द्वारा उसे विधिक घोषित करने पर वहाँ भारी बवाल मच गया है। राजनैतिक लोग इसे भारतीय संविधान द्वारा भारत के हर नागरिक को प्रदत्त चुनाव लड़ने के मौलिक अधिकार का हनन बता रहा है, जबकि शिक्षा के मौलिक अधिकार की कोई बात ही नहीं कर रहा है। कैसी विडम्बना है, जिसके चलते आज भी ग्राम पंचायतों और ग्रामीण क्षेत्रों की स्वायत्तशासी संस्थानों में 75 प्रतिशत, विधान सभा और संसद तक में काफी सदस्य अल्प शिक्षित और कुछ तो निरक्षर भट्टाचार्य हैं।

एक अन्य बेहद संवेदनशील मुद्दे की ओर तो किसी विधायक सांसद और मानवाधिकार के अध्यक्ष तथा माननीय न्यायपालिका का भी ध्यान जाता ही नहीं है कि बाजार छोटी मुद्रा के दीर्घकालीन अभाव के कारण आम आदमी के उपभोक्ता अधिकारों का प्रतिदिन प्रतिपल बाजार में हनन हो रहा है, उसका शोषण हो रहा है। छोटी मुद्रा के अभाव में आम उपभोक्ता अपनी क्षमता और जरूरत के स्थान पर बिक्रेता की मर्जी के अनुसार वस्तु क्रय करने को अभिशप्त हैं, मगर यह आम आदमी की जिंदगी से जुड़ा मुद्दा उठाने की फुर्सत न तो सुब्रह्मण्यम स्वामी है, न राहुल गाँधी और न ही अरविन्द केजरीवाल। इन सबके सामने बड़े–बड़े मुद्दे हैं राष्ट्रीय स्तर पर गड़े मुर्दे उखाड़कर केन्द्रीय मंत्रियों की टाँग खींचने में जो आनंद है, वह आम आदमी के सूखे मुद्दे उठाने में कहाँ। संसद में मछली बाजार का दृश्य उपस्थित करने के लिए स्कूली उद्दंड छात्रों की तरह शोर मचाकर अनुशासन की सभी सीमाएँ तोड़ते हुए दूरदर्शन पर जीवन्त प्रसारण के माध्यम से दूर–दूर तक ख्याति पाने में जो परमानंद है, वह श्रीसुभाष जैसे परिश्रमजन्य कठोर व्रतवाले कामों में कहाँ मिलेगा। प्रधानमंत्री जी कालाधन

विदेशों से वापिस लाने की बात कर रहे हैं, इस उपभोक्ता अधिकार के हनन और शोषण से काला धन कुटीर उद्योग की तरह भारतीय बाजार की छोटी से छोटी बिक्रय इकाई में स्वत: पनप रहा है, मगर यह छोटे आदमियों के छोटे मुद्दे हैं, महान राष्ट्रीय नेताओं को इनमें उलझना शोभा नहीं देता, इनसे उलझने के लिए तो वास्तव में 56 ईंच की छाती वाले श्रीसुभाष को ही अवतरित होना पड़ेगा।

श्रीमती पुष्पा भारती ने अपने लेख में इस नरशार्दूल सुभाष के अपने देश भारत और भारतवासियों के प्रति सहानुभूति का वर्णन करते हुए लिखा है कि 1942 में भारत के बंगाल क्षेत्र में भयंकर अकाल पड़ा था। दुर्भिक्ष की गाथाएँ सुन–सुनकर सुभाष ने एक दिन पीड़ा भरे स्वरों में घोषित किया था–मलाया, सिंगापुर, वर्मा के तमाम हिन्दुस्तानी अपनी सारी सम्पत्ति देकर भारत की दुर्भिक्ष मिटाने को तैयार है। अगर अंग्रेज इस बात का आश्वासन दें कि चावल के जहाजों को डुबोयेंगे नहीं, तो हम कलकते से कराची तक के बंदरगाह को चावल से पाट देने के लिए तैयार हैं। मगर विदेशी शासक कब चाहते थे कि दुर्भिक्ष मिटे। वे तो 1942 की क्रान्ति का दंड हमारे देश को दे रहे थे।

कथन से स्पष्ट है कि इस बेहद गंभीर मानवीय विषय पर भी अंग्रेजी हुकुमत ने श्रीसुभाष का प्रस्ताव नहीं माना; क्योंकि अंग्रेज सरकार तो श्रीसुभाष के नाम से डरती थी। उसका डरना स्वाभाविक ही था; क्योंकि श्रीसुभाष ने बेहद साधनविपन्न स्थितियों में सिर्फ अपने व्यक्तित्व के और सफल कूटनीति के आधार पर तमाम विदेशी राष्ट्राध्यक्षों से मान्यता प्राप्त की, बल्कि हिन्दुस्तान को आजाद कराने के लिए आजाद हिन्द फौज के गठन के लिए आर्थिक राजनैतिक और सामरिक सहयोग प्राप्त कर देश एक सशक्त सशस्त्र सेना संगठित कर देश के स्वाधीनता संग्राम को मुखर रूप दिया।

दुर्भिक्ष पीड़ित बंगाल के लिए चावल भेजने के प्रसंग में कोई भी निष्पक्ष विचारक इसमें गाँधीजी के मौन पर प्रश्नचिह्न लगाएगा कि क्या सुभाष से मात्र वैचारिक मतभेद के कारण वह उनके लिए इस कदर राजनैतिक अछूत हो गये थे कि गाँधी जी ने श्रीसुभाष का प्रस्ताव अंग्रेजों से मनवाने के लिए कोई दबाव नहीं बनवाया। वैसे तो वह किसी भी विरोध का शमन करने के लिए उनके ब्रह्मास्त्र भूख हड़ताल का प्रयोग करने में नहीं चूकते थे। स्पष्ट है कि वह अपने आत्मिक पुत्र के उभर रहे राजनीतिक व्यक्तित्व को भी सुभाष के निजी मेहनत और लगन से निर्मित अंतर्राष्ट्रीय व्यक्तित्व के तले दब जाने के भय से आक्रान्त थे।

श्रीमती भारती का लेख काफी विस्तृत है, जो श्रीसुभाष अप्रतिम अनुपम व्यक्तित्व को प्रकाशित करते हुए उन्हें अपने ही देश के शासकों द्वारा राजनैतिक प्रतिस्पर्द्धा में अजेय प्रतिद्वंद्वी होने के कारण समुचित मान नहीं दिये जाने और इतिहास के पन्ने मे दफन करने के कुत्सित प्रयास को प्रकाशित करता है। यह श्रीमती पुष्पा भारतीजी के इन शब्दों से प्रमाणित होता है–''आजादी उत्तराधिकार के रूप में मिली थी, उस सरकार से (श्रीमती भारती का संकेत ब्रिटिश सरकार की ओर है) जिसने सुभाष को देशद्रोही, भगोड़ा घोषित किया था। कैसी विडम्बना है कि हमारी अपनी स्वतंत्र सरकार ने भी एक सर्क्यूलर भेजकर आर्मी के मेस में सुभाष का चित्र टाँगने से मना कर दिया था। कई सरकारें बदलीं, पर यह गुत्थी आजतक सुलझ नहीं पाई है कि सुभाष की मौत कब और कहाँ हुई?''

श्रीमती भारती के कथन और पश्चिम बंगाल सरकार श्रीसुभाष बोस संबंधी फाइलें केन्द्र सरकार को सौंपने के बाद कुछ फाइलों के विवरण से तथा हाल ही में भारत के तत्कालीन प्रधानमंत्री लालबहादुर शास्त्रीजी की रूस यात्रा के दौरान श्रीनेताजी की शक्ल सुरत के एक व्यक्ति की उपस्थिति के एक फोटो सार्वजनिक हो जाने पर नेताजी की पूर्व घोषित हवाई दुर्घटना में फारमोसा में हुई मृत्यु का इतिहास तो स्वयं अप्रामाणिक प्रतीत होने लगा है, अब समस्त भारतीयों और सामाजिक संगठनों का कर्तव्य है कि वह श्रीमती भारती के श्रीसुभाष बोस के चित्र को आर्मी के मेस में नहीं लगाये जाने के सर्क्यूलर संबंधी कथन की सूचना के अधिकार के तहत आवेदन कर जाँच करावे और स्थिति यथावत् पाये जाने पर भारत के वर्तमान सत्तारूढ़ दल के प्रमुख प्रधानमंत्री को श्रीसुभाष बोस जैसे सफल सेनानायक का चित्र आर्मी मेस में लगाये जाने का आग्रह करे।

कविता :

लावारिस कुत्ते

बच्चू चौधरी अकेला
भागलपुर
मो0 8936090887

मेरा घर उस बस्ती में है
जिस बस्ती में रहते हैं
सैकड़ों लावारिस
कुत्ते!
सुबह से शाम तक ये लावारिस कुत्ते
भौंकते रहते हैं
इनके भय से मेरा
और
मेरी बीवी–बच्चों का
घर से निकलना हो गया है
दुर्लभ
लगता है जैसे
बस्ती से लेकर सारे शहर में
इन्हीं कुत्तों का
साम्राज्य
हाथों में लाठी
या
पत्थर लेकर चलना नहीं है मेरी
आदत
जो कि
मैं अपनी और
अपनी बीवी या बच्चों की
कर सकूँ
हिफाजत
ये नुकीले, चमकीले धारदार
दाँतोंवाले
कुत्ते
जिन लोगों को काटे हैं
वे लोग सब के सब हो गये हैं
पागल
कुछ उनमें से मर भी गये हैं
और
जो बचे हैं वे इन्हीं कुत्तों की तरह
भौंकते हुए गलियों में
सड़कों पर भटकते हुए आ रहे हैं
नजर
इसलिए
मैं इन कुत्तों को
और
पागलों को देखकर
उनके बारे में सोचकर
सोचते–सोचते
मैं हो गया हूँ
पागल
कि
कहीं इन कुत्तों की तरह काट लेने से
मैं हो न जाऊँ
पागल!

आलेख

लोकगीत और देशप्रेम

डॉ0 विजय कुमार मिश्र
वरीय उद्घोषक कम्पीयर आकाशवाणी, भागलपुर
मो० 9430505984

सुन्दर सुभूमि भैया भारत के देशवा से
मोरे प्राण बसे हिन्द खोह रे बटोहिया....
अपर प्रदेश देश सुभग सुधर वेश
मोरे हिन्द जग के निचोड़ रे बटोहिया

पूर्वी धुन में सौ वर्ष पूर्व लिखी हुई रघुवीर नारायण शरण की ये पंक्तियाँ, आज भी विश्व के किसी छोर पर बैठे हुए एक भारतीय के दिल को झकझोर जाती है। भाव विह्वल कर देती है, विवश कर देती है देश के लिए कुछ कर गुजरने को। यही है लोक साहित्य की शक्ति और यही है लोकगीत की ताकत। निःसंदेह इसका सृजन एक ही व्यक्ति करता है, परन्तु उसमें लोकतत्व इतने प्रभावी होते हैं कि कालान्तर में वह सर्जक के नाम से जुड़ा न रहकर लोक का बन जाता है। समूह का बन जाता है। सामूहिक संवेग की अभिव्यक्ति होती है। जोश दूना, चौगुना हो जाता है। एक में ही समवेत शक्ति आ जाती है, फिर भी वह ऐसा कर गुजरता है, जो उसका अभीष्ट होता है। बात चाहे अनुराग की हो या विराग की। अनुरोध की हो या विरोध की। दोनों ही प्रकारों से हमारा लोक साहित्य भरा पड़ा है और इसमें लोकगीतों की तो एक लंबी समृद्धशाली परंपरा है।

यह अलग बात है कि कुछ लोकगीत सदियों से जनमानस के कंठ में बसे रहने के कारण आज भी वातावरण में गुंजित है; क्योंकि ये अनुरागात्मक हैं, अनुरोधपरक हैं, इनमें प्यार है, मनुहार है और जीवन के सारे संस्कार हैं। ठीक इसके विपरीत कुछ विस्मृति के गर्त में दब से गये हैं; क्योंकि ये विरागात्मक हैं, विरोधपरक हैं, इनमें रार है, खार है और मुक्ति हेतु तकरार है। इसके बावजूद आज भी ये जीवन को संपूर्णता के साथ देखते हैं, टिप्पणी और परामर्श देते हैं, मार्ग और राह बतलाते हैं, जिससे मानव प्रेरित हों। अपनी स्थिति को पहचानें। अपने जीवन संघर्ष में सफल हों और किसी–न–किसी रूप में मानवीय शोषण के विरुद्ध प्रतिक्रियात्मक भावों की मुखर अभिव्यक्ति कर सकें लोक कंठों से। लोक का मतलब सिर्फ मनुष्य नहीं है, मनुष्येतर जगत भी हैं, जिनके बगैर मनुष्य अपने संपूर्ण अर्थ की अभिव्यक्ति कर ही नहीं सकता। संपूर्ण सृष्टि भी कृष्टा की एक अद्भुत अभिव्यक्ति है, जिसके प्रारंभिक सत्यों का साक्षात्कार इसी लोक ने किया। यही कारण रहा है कि 'मिथ' और 'पुराण' भी सबसे पहले लोक में ही रचे गये। कृष्टा, सृष्टि और इसके आमूलचूल की सारी बातें बतलायी गयीं। प्रेम को हर कोण पर परिभाषित और स्थापित किया गया तथा इसमें भी सबसे शीर्ष स्थान दिया गया जननी, जन्मभूमि और देश–प्रेम को। कहा गया–

'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरियसी।'

यानी जननी और जन्मभूमि स्वर्ग से भी बढ़कर है। वहाँ विष्णु पुराण गुणगान करता है–

गायन्ति देवाः हि गीतकानि धन्यास्तु ते भारतभूमि भागे ।
स्वर्गाववर्गाष्पद मार्ग भूते भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात् ।।

अर्थात् धन्य है हमारी भारतभूमि, जहाँ की माटी में लोटने के लिए देवता भी तरसते रहते और नित इसकी प्रशंसा के गीत गाते रहते हैं। कारण स्पष्ट है कि यहाँ नैसर्गिकता है, उन्मुक्तता है, प्रकृति के बेहद करीब रहने की प्रवृत्ति है। जैसा जीवन वैसा लोक–मन, वैसा लोक–कर्म, वैसा लोक–कथन। ऋग्वेद कहता है–

'व्यारिष्टे बहुपा ये यतेमहि स्वराज्ये।' अर्थात् स्वराज्य व्यवस्था को ठीक से चलाने का उत्तम उपाय करना चाहिए। यानी सृजन का क्रम मनसा, वाचा, कर्मणा जारी रहना चाहिए। जिसका सीधा संबंध लोक से और लोक सृजन–सामर्थ्य का कोई ओर–छोर न तो है, न हो सकता है। हमारा समाज नगरीय और ग्राम्य दो संस्कृतियों का मिश्रण है। लोक दोनों संस्कृतियों में विद्यमान है। 'माता भूमि पुत्रोहम् पृथिव्याः।।5/66/6।। अर्थात् यह भूमि माता है और मैं पृथिवी का पुत्र हूँ। अथर्ववेद में यह ऋचा लोक का महाप्राण है। लोकजीवन इस ऋचा के आशय का प्रतिनिधित्व युगों से कर रहा है और यही लोक–साहित्य की आधारशिला है, जो युगों से पीढ़ी–दर–पीढ़ी, परम्परा–दर–परम्परा सतत प्रवाहमान है।

भारत रह धरती नें देनै छै इंजोर, सगर नाचै छै मोर ।
ऐंगना मँ नाचै छै श्यामल किशोर, सगर नाचै छै मोर ।।

जगद्गुरु की उपाधि से विभूषित भारत में भी वक्त ने कई करवटें लीं। समय और काल के प्रवाह में हमने बहुत कुछ पाया, तो बहुत कुछ खोया भी। फिर यहाँ लोक इससे प्रभावित हुए बिना कैसे रहता। इस क्रम में डॉ0 नामवर सिंह जी का यह कथन बिल्कुल सत्य है–मशीनी युग ने लोक–साहित्य विशेषतः लोकगीतों की रचना को गहरा धक्का पहुँचाया है। जहाजरानी और रेल ने हमारे देश के मध्ययुगीन नौका व्यापार को इतनी गहरी ठेस पहुँचायी है कि अब नावों की लंबी यात्रा भी समाप्त हो गयी है और उनके साथ–साथ उन यात्राओं की किस्से–कहानियाँ और गीत भी चले गये।.....

आधुनिक युग की मशीनों से हमारा रागात्मक संबंध इतना गहरा नहीं हो सका है कि वे लोकगीतों के प्रेरक बन सकें। बिजली की रोशनी फैल चुकी है, फिर भी मिट्टी का दीया ही हमारी कल्पनाओं और भावों का संबल है। (इतिहास और आलोचना, पृ0 127)

यह सही है कि बिजली की रोशनी की तरह आज अनुरागात्मक और अनुरोधपरक लोकगीत चहुँ दिशि जरूर फैल चुके हैं, परन्तु वर्ष में कभी–कभी ही सही दीपावली में लगनेवाले माटी के दीये की तरह विरागात्मक और विरोधपरक लोकगीत आज भी हमारी परंपराओं, कल्पनाओं और भावों के संबल हैं; क्योंकि इनमें बनावटीपन नहीं। इनमें एक ओर तो तो लोकजीवन के तत्कालीन परिवेश का दुख–दर्द, हर्ष, उल्लास, अनुभव तथा जीवन पर वैचारिक प्रतिक्रियाएँ मिलती हैं, वहीं दूसरी ओर पर्वों, त्योहारों, संस्कृति, विरासत और प्रकृति के स्वरूप नजर आते हैं। शब्द और अदायगी रूखी या मीठी हो सकती है। शास्त्रीय संगीत के मर्मज्ञ जितनी अधिक गहरी होती जाती है, उतनी ही रूखी बन जाती है। फिर ऐसे में लोक–संगीत का क्या कहना। सत्य तो यह है कि शास्त्रीय संगीत के भी सर्जक का गुरु स्थान है लोक–संगीत।

भारतवर्ष में लोकसंगीत की तीन सौ से अधिक शैलियाँ दिखलायी देती हैं। उनमें बुर्राकाठा (आंध्र प्रदेश), बाउला और भरियाली (बंगाल), विदापद और विदेशिया (बिहार), गरवा और रास (गुजरात), गी–गी पद (कर्नाटक), कोलकाली पतू (केरल), पवादा और लखनी (महाराष्ट्र), हीर और गिद्धा (पंजाब), रूफ और छाकुली (कश्मीर), सुआ और सैरे (मध्यप्रदेश), दासकाठिय और पुल्ला (उड़ीसा), मांड, पनिहारी और धूमर (राजस्थान), चैती और कजरी (उत्तरप्रदेश) और जलो और डाकनी (गोवा) प्रमुख है। इन्हें

आसानी से जाना और पहचाना जा सकता है। क्योंकि इन आंचलिक शैलियों ने अपने मौलिक सांगीतिक स्वरूप की शुद्धता को आज भी कायम रखा है। कथ्य और तथ्य चाहे अनुरोधपरक हो या विरोधपरक, इनके स्पष्टस्वरूप ने इन्हें स्थायित्व प्रदान किया है। इनमें से कुछ तो अनुरोधपरक होने के कारण पीढ़ी–दर–पीढ़ी, परंपरा–दर–परंपरा स्वतः स्फूर्त लोककंठों से सतत प्रवाहमान हैं और लोक–परंपरा, लोक–संस्कृति की रक्षा करते हुए दिल में प्रेम और भक्ति की गुदगुदी पैदा करते हैं। परन्तु कुछ विरोधपरक होने के कारण स्मृति के गर्त में दब जाने के बावजूद भी हमारे अंतःकरण में आज भी अजर–अमर हैं और जब भी मुखरित होते हैं सुरक्षित इतिहास, विरासत को समेटे गर्व, दर्प, आसक्ति और शक्ति संचार करते हैं : बाबू कुँवर सिंह, भाई अमर सिंह, दोनों अपने भाय हो राम। बतिया के कारण बाबू कुँवर सिंह, फिरंगी से रेड बढ़ाये हो राम। स्पष्ट है कि विरोध मूलतः पूर्व के नृशंस शासकों से था, फिरंगियों से था, अंग्रेजों से था, जो जनता की दृष्टि में आदमखोर से कम नहीं थे। उनकी धूर्ततापूर्ण नीतियों से दस्तकार और किसान दिन–व–दिन टूटते चले गये, फलस्वरूप लोक–मन में तत्कालीन शासक के प्रति घृणा पैदा हो गयी। विरोध के भाव भर गये और लोक–कंठों ने आग उगली।

अजी अंग्रेज तयं हर हमला बनाये कंगला।
सात समुन्दर विलायेत हो आके,हमला बना दे भिखारी जी।
हमला न चाये तयं बेंदरा बरोबर, बन गये तयं हर मदारी जी ।।
चीथ चीथ के तयं हम चेथी के मांस ला
अपन वर तयं हर रेकास बंगला।

इस छत्तीसगढ़ी लोकगीत के ही समान देश की हर भाषा, हर बोली में लोककंठों ने उन दिनों आग उगली, जो आज हमारी थाथी है, आधार है इतिहास की। चूँकि एक सदी तक अंग्रेजों का नृशंस शासन रहा। स्वाधीनता का इतिहास कुछ लिखित, बहुत अलिखित रहा। एक सदी बाद जब स्वाधीनता की रक्षा के लिए प्राण न्योछावर करनेवालों का इतिहास ढूँढा गया, तो लिपिबद्ध विवरण प्राप्त न हो सका। ऐसे समय में यही विभिन्न भाषा और बोली के लोकगीत कुरबानी की इतिहास के आधार बने। छत्तीसगढ़ भी ठोकिस ताल, अठरा सौ सन्तावन साल। गरजिस वीर नारायण सिंह मँ टिस सबे फिरंगी चिन्ह। इस प्रकार तमिल लोकगीतों में 'कट्टबोम्म' और 'मरुदु' की शौर्य गाथा आज भी गाँव–गाँव लोक गाते हैं–

'कट्टबोम्मु शण्डै कुम्मि, भारत न रह सकेगा गुलामखाना।
आजाद होगा–होगा, आता है वह जमाना।'

वैसे यह गीत उन्नीसवीं सदी में लिखा गया, परन्तु कट्टबोम्म के राज्य के ग्रामीणों ने अठारहवीं सदी में ही देश को जगाकर अंग्रेजों से भिड़ने की प्रेरणा दी। ब्रिटिश शासन को कैसे और कितना विरोध किया जाए, इसकी हवा मगही लोकगीतों में भी है–

चेतु चेतु भइया अब, हिन्दवा के लोग सब,
तहरा के पपिया लुटल अंगरेजवा।
भारत मुलुकवा के भारत बनवले से,
स्वास्थ्य के धुखा चलौले अंगरेजवा।।

अठारह सौ–उन्नीस सौ सदी की ग्रामीण नारियाँ भी देश की स्वाधिनता की रक्षा करने के लिए प्रेरणा देती हुई गीत गाती थीं। पूरे देश में अंग्रेजों के विरुद्ध कड़ा विरोध था। गुलामी के बंधन से मुक्ति हेतु सबका मन बेचैन हो उठा था। आत्मपीड़ा से भीर बोल मैथिली में भी उभरी–

कर्म बह सँ एक कुल्ली, ब्रिटिश केर साम्राज्य साजल
तही ब्रिटिशक दास नृपतिक, हम रहै छी पाछु लागल
धिकधिगति ओहि बुधि कँ जे लोक कँ कायर बनावै
त्यागि उद्यम, पेट हे तक, भीख, खुश आमद सिखावै ।

स्वतंत्रता संग्राम के दिनों में नगरों में प्रतिबंध लगा। शिक्षित वर्ग भयातुर हो गया था। कोई समाचार पत्र नहीं था। ऐसे में देशभक्ति की भावनाओं का प्रचार कौन करता?दक्षिण में लोग इस बात से चिंतित थे। उत्तर भारत में चारणों और भाटों ने नगरों से दूर रहते हुए भी देश को सदा जागरूक रखा। उसी भाँति ग्रामों में रहनेवाले लोक कवि अंग्रेजों के अत्याचार और जन–नायकों की सक्रियता को ग्रामीण बोली और छन्दों में मौखिक गा रहे थे।

अब न जुलूम सहल इ जाय, सबके होए एक ठो राय
गाँधीजी के मान बात, गोरमिन्ट तब होयत मात ।

ब्रिटिश दमन के विरुद्ध बज्जिका में उभरी ये आक्रोश भी कितनी समीचीन है, जिसे घर–बार विहीन लोक गायक हाथ में ढोल बजाते हुए गाँवों व वनों के प्रांतर भागों में जहाँ–तहाँ गाने लगते थे। ये प्रदेश अंग्रेजों की दृष्टि से बाहर के थे। फिर ये लोक–गायक खाना जंगी जीवन बिताते थे। अतः उन्हें पकड़ पाना भी संभव नहीं था। वे कदाचित अनगिनत थे। एक दूसरे से गीत सुनते और स्वयं गायक बनकर निकल जाते थे। फिर चन्द दिनों के अंदर ही ये गीत गाँवों के घर–घर तक पहुँच जाते थे। गाँवों के वीर नारियाँ शाम को इन्हें दोहराने लगती थीं। बालक–बालिकाएँ झुंड में गोलाकार खड़े होकर तालियाँ बजाते हुए इन गीतों को गाते थे। इन गीतों को सुनकर युवक जोशीले हो उठते थे और देश के लिए मर–मिटने को तैयार हो जाते थे।

वैरी सम्मुख देख के, कायर जीवन डराय
परान हथेली मां राउत के छाती रहै अडाय ।

वीरता की, वीर पुरुषों, महिलाओं की स्मृतियाँ सदा से लोकगीतों में समाविष्ट होती आयी हैं और आततायियों का चित्रण सदैव व्यंग्य के माध्यम से होता आया है। लार्ड वारेन हेस्टिंग का नाम भारत में लूट मचानेवाले और एक आततायी शासक के रूप में है। इतिहास चाहे और भी जो कहता हो, पर लोककंठ तो यही कहता है–हाथी पै हौदा घोड़े पै जीन, जल्दी से भाग गये वारेन हेस्टिंग।

1857 के विद्रोह और स्वाधीनता के प्रथम उन्मेष में बाबू कुँवर सिंह और रानी लक्ष्मीबाई स्वाधीनता आंदोलन के प्रतीक थे। यही कारण है अमर महानायक के रूप में लोककंठों से उनकी गाथा आज भी गूंजित है–'बाबू कुँवर सिंह तोहरे राज बिना, अब न रंगईबो केसरिया।' 1857 के जिस गदर में गाय और सूअर की चर्बी की बात आयी है, उसे लोकगीतों ने ही घर–घर पहुँचायी।

लिखि लिखि पतिया के भेजलन कुंवर सिंह,
ए सुनु अमर सिंह भाय हो राम
चमड़ा के शेरवा दाँत से हो काटे कि,
छतरीं के धरम नसाय हो राम ।

उन दिनों जनमानस ने मुक्ति हेतु की संगठित और असंगठित प्रयास किये। परास्त भी हुए, लेकिन मन से हार कभी नहीं मानी। उनका नारा था–'मन के हारे हार है, मन के जीते जीत।'

1857 में वे अंग्रेज के हाथों जरूर परास्त हो गये, पर लोक मानस कभी परास्त नहीं हुआ। शोषण के चित्र बनते गये और लोक–कंठों से व्यंग्य रूप में उभरते गये।

बिस्कुट और चाय पीते हैं, करते सैर जहाजन में,
पाँच लाख वायसराय कूँ मिलते, देखि ले और अखबारन में।

सन सन्तावन में जब अंग्रेजों ने वाजिद अली शाह से अवध की गद्दी छीनकर उन्हें लखनऊ से निष्कासित कर दिया, तो इस दुःख से अवध की जनता रो उठी–

गलियन–गलियन रैयत रोवै, हरियन बनिया बजाय रे ।
महल में बैठी बेगम रोवे, डहरी पर रोवै खवास रे ।

मोती महल की बैठकी छूटी, छूटी है मीना बाजार रे ।
बाग जमनिया की सैर छूटी, छूटे मुलुक हमार रे ।।

आततायियों के विरुद्ध ऊँच स्वर में भले ही जनमानस बहुत दिनों तक न बोला हो, परन्तु उनके लोकगीतों में विरोध का स्वर प्रखर रहा। ब्रजलोक कंठ से कहा—

चढ़ि घोड़े पै धांगि दियौ धांगि दियौ भाई धांगि दियौ।
दिल्ली जाए पुकारी है, दिल्ली की है ऊँची कोर
चोर गई चूल्हा की ओर, मार रे भैया पहली चोट
फिरंगी बैठी कुंड में, दै सारे के मुंड में ।

लोककंठों ने किसी भी आततायी को श्रेष्ठ नहीं माना, बल्कि उनका नाम हिकारत से लिया। वहीं धर्म, कर्म, त्याग और बलिदान की स्मृतियों के प्रति वह सदा मृदु रहा।

गौतम आरु गाँधी सें दमकै छै धरनी,
महिषा क मालूम छै दुर्गा के करनी।
सीता, सावित्री, अनुसूया छै घर–घर में,
बिहुला के गूँजै छै गान ।।

इसी मृदुता और स्पष्टवादिता के कारण लोक में लोकगीतों की लोकसत्ता बनी रही। आजादी की लड़ाई के एक प्रमुख नायक थे गांधीजी। वे लोक से जुड़े थे। उनकी दृष्टि लोकदृष्टि थी, उनका हृदय लोकहृदय था। लोक के प्रति इसी संवेदनशीलता के कारण वे सबके दिल को भाये और लोक पर छाये।

कहीं टूटे न चरखा के तार चरखवा चालू रहे।
चूल्हा बने गांधी दुल्हिन सरकार, चरखवा चालू रहे ।

कहा जाता है कि नील के खेती में शोषण के विरुद्ध आवाज उठानेवाली स्थानीय जनता की बकरियों को अंग्रेज, मवेशियों को जेल अड़गड़ा में बंद कर देते थे। ऐसे साम्राज्यवादी शोषण के खिलाफ जब महात्मा गांधी ने चंपारण के लिए साहबों के खिलाफ आंदोलन चलायी, तो उसके पीछे लोकगीतों की ही मार्मिक अभिव्यक्ति थी। ''भइल लिलहबन के राज, अब कइसे जीयबू बकरियो।'' शताब्दियों तक भारतीय गुलामी की बेड़ी में अकड़े रहे। मुसीबतों के पहाड़ के नीचे गुजरते रहे, पर एक अदम्य इच्छा रही, जो बड़े–से–बड़े तूफान को भी झेलने का उन्हें साहस प्रदान करती रही। नृशंस शासकों से निरंतर पीड़ित रहने के बावजूद भी जनमानस कभी परास्त नहीं हुआ। इसका एक प्रमुख कारण था इनकी लगनशीलता, इनकी कर्मप्रधानता, इनकी समृद्ध लोक–संस्कृति और इनके समृद्धि लोकगीत, लोक–साहित्य।

गयौ फिरंगी राजु काजु गांधी को आयो है
बापू के बलबूते पै अब सुराजो पायो है ।

देश और माटी की प्रशस्ति में खुदाबुओं से ओतप्रोत ऐसे ही लोकगीत सदियों से अंधेरों में एक नन्हे से दीपक का कार्य करती रही और सदियों तक करती रहेंगी।

केसरिया बाह्म, आओनी, पधारो, म्हारे देश ।

लघुकथा

निधि

अरविन्द कुमार मुन्ना
सुलतानगंज, भागलपुर, 09955040202

गुरुदेव! एक विनम्र सी आवाज सुनकर मैंने कहा–हाँ, हाँ, अंदर आ जाओ। मेरे कमरे में प्रवेश कर उसने मेरे चरण छुए। तुम जो चाहते हो उसे पूर्ण करें। मेरे मुख से निकला–डे आफिसर कैसी हो?आप गुरुजनों के आशीर्वाद से मैं ठीक हूँ। मैडम नही दिख रही है गुरुदेव! निगाहें दौड़ाती हुई वह बोली। सभी बाहर गये हैं। अपनी कलम बंद करते हुए मैंने कहा–बैठो। कोई जरूरी चीज लिख रहे थे गुरुदेव क्या?बैठती हुई उसने पूछा। मेरे पूर्व के विद्यालय में मेरा एक प्रिय शिष्य था। सभी उसे देवा पुकारते थे। मैं उसे देवीलाल कहता था। वह जन्मांध था। पर बहुत मेधावी और जिज्ञासु था। इसी कारण उससे मुझे आत्मीयता थी। तुलसी जयंती के अवसर पर प्रतियोगिता में कुछ बोलने की उसकी बलवती इच्छा के कारण भाषण लिखकर उसे मैंने दिया था। संयोग से वह प्रथम आया। उसी घटना को मैंने हिन्दी में लिखा, तो एक कहानी बन गई देवीलाल। उसी को मैं अंगिको में अनुवादित कर रहा था। गुरुदेव! हिन्दी में आपकी लिखी तो कई पुस्तकें मैं पढ़ चुकी हूँ, पर अंगिका में भी आप लिखते हैं। मैंने सरलता से कहा–देखो निधि! हमलोग अंग क्षेत्र के वासी हैं। इस नाते अंगिका में कुछ अभिव्यक्त करना हमारा धर्म बनता है। अच्छा हो कि तुम भी कुछ लिखना प्रारंभ करो। अच्छा मैं प्रयास करूँगी, पर गुरुदेव आज मैं आपसे कुछ माँगने आयी थी। बोलो, क्या चाहिए तुम्हें?आपके गमलों में जो सफेद अड़हुल और मोगरा का फूल के पौधे हैं, मुझे बहुत पसंद है। अरे, तो ले जाओ न। वैसे भी मैं फूलों का शौकीन हूँ। और जो फूलों का शौकीन होते हैं, उन्हें दूसरों के घरों में भी फूल देखकर उतनी ही खुशी होती है, जितनी खुद के घर में देखने से और एक बात जानो निधि, फूल और ज्ञान बाँटने के लिए होते हैं। इसलिए तुम ले जाओ न। अच्छा गुरुदेव! मैडम के आने पर किसी दिन ले जाऊँगी। माँगने की इच्छा तो आज मेरी भी तुमसे हो रही है निधि, पर डरता हूँ कि तुम ना न कह दो। गुरुदेव! धनुर्धर शिष्य एकलव्य जब वैसे गुरु को अपना अँगूठा काटकर दे सकता है, जिन्होंने उसे तीरंदाजी का गुढ़ तक न सिखाया, फिर आपके लिए तो मैं, अपना गला भी कटा सकती हूँ। कहीं तुम भावना में तो नहीं बोल रही हो?जी नहीं, यह मेरा आपके प्रति समर्पण भाव है गुरुदेव! उठकर मैंने उसे अपनी बाँहों में भर लिया, निधि...?जी गुरुदेव?कुछ ही पल बाद, मैं हठात् रो पड़ा। गुरुदेव! आप रोने क्यों लगे?मुझे मेरी गलती का अहसास हो गया। आपने ही हमें सिखाया था न?सीस दिये जो गुरु मिलें, तो भी सस्ता जान। मैं फफक पड़ा'–काश! मैंने तुझे अधूरा ज्ञान न दिया होता। मैं अलग हट गया। अधूरा ज्ञान। मैं समझी नहीं। आगे मैंने कहा होता–आबरु दिये जो स्वर्ग मिले, तो वह नरक समान। निधि! आज से मैं तुम्हारा गुरु नहीं, तुम मेरी गुरु हो। मुझे क्षमा कर दो। ऐसा क्यों कहते हो गुरुदेव?मैं आपकी प्रिय शिष्या हूँ। मेरे बड़े पापा के अनन्य मित्र होने के नाते आपने मेरा हर तरह से ख्याल रखा। पुस्तकीय ज्ञान के अलावा भी, आपने मुझे बहुत कुछ सिखाया है। आपने ही मुझे इस लायक बनाया कि मैं आज अपनी सहपाठी छात्राओं की चहेती हूँ और माध्यमिक परीक्षा में प्रथम स्थान पाकर, उच्च माध्यमिक की मेधावी छात्रा मानी जाती हूँ। नहीं निधि, यह सब तुम्हारी व्यक्तिगत प्रतिभा की वजह से है, मैंने कुछ नहीं किया। नहीं गुरुदेव! आज भी आपकी वजह ये मुझे नई सोच मिली, जो अब मेरा रक्षा–कवच बनेगी। मैं आपके प्रति कृतज्ञ हूँ गुरुदेव! जानती हो निधि, अबतक मैं समझता था कि प्रतिभा, कर्तव्यपरायणता और लोकप्रियता ही सबसे बड़ी सम्पत्ति है, पर तेरी सहमति ने मझे अहसास करा दिया कि चरित्र एवं खुद की गरिमा की रक्षा तथा व्यक्ति या कार्य के प्रति निर्लिप्तता ही जिंदगी की सबसे बड़ी निधि है।

आलेख

आर्यों में अनार्यों की देन

विजय वर्धन
भागलपुर मो० 9204564272

भारतवर्ष में प्राचीन समय से कई जातियों के लोग आते और बसते रहे हैं। यही कारण है कि हमारा देश लघु विश्व के रूप में उभरकर विद्यमान है। सबसे पहले यहाँ नीग्रो आए, जो दक्षिण अफ्रीका के रहनेवाले थे और पापुअन भाषा बोलते थे। इनके बाद संथाली आए, जो आस्ट्रिक भाषा बोलते थे। संथालियों के बाद द्रविड़ आए, जो तमिल भाषा बोलते थे। ये जातियाँ भारतवर्ष के दक्षिणी भाग में बसीं। इनके बाद उत्तर की ओर से आये आए, जो भारतवर्ष के उत्तरी भाग कश्मीर एवं पंजाब में बस गये और उसके बाद उत्तरप्रदेश, बिहार आदि राज्यों में फैल गये। इस प्रकार विंध्याचल से उत्तर में आर्य तथा दक्षिण में अनार्य का वास हो गया। आर्य चूँकि गौरवर्णी थे और अनार्य श्यामवर्णी, इसलिए आर्यों में एक प्रकार से अहंकार की भावना भर गई। यही कारण था कि दोनों में संघर्ष प्रारंभ हो गया। यह संघर्ष हजारों वर्षों तक चला। आर्य खुद को सुर एवं अनार्यों को असुर कहने लगे। बाद में कई ऋषि–मुनियों ने मंदार पर्वत, जो बिहार के बांका जिला में स्थित है, के निकट आर्यों एवं अनार्यों के बीच समझौता करवाया, जिस समझौता को समुद्रमंथन की घटना कहा जाता है। इसमें अगस्त्य मुनि ने अहम भूमिका निभायी थी। इसके बाद आर्यों एवं अनार्यों में इतना मधुर संबंध हो गया कि दोनों समुदायों के बीच विवाह भी होने लगे, जिससे दोनों के बीच सांस्कृतिक आदान–प्रदान भी होने लगे और भारतवासी एक झंडे के नीचे आ गये।

अनार्य शारीरिक रूप से ज्यादा बलिष्ठ थे तो आर्य मानसिक रूप से। इसलिए आर्यों ने बौद्धिक विकास का काम ज्यादा किया। विश्व की पहली पुस्तक ऋग्वेद की रचना आर्यों ने ही की। इसके अलावे भी उन्होंने कई वेद, पुराण, गीता, रामायण, महाभारत लिखे और जीने के ढंग को श्रेष्ठ बना लिया। किन्तु गहन अध्ययनों से ज्ञात होता है कि अनार्यों के कई चीजों को आर्यों ने अपनाकर अपने जीवनस्तर को ऊँचा उठाया है, जो निम्नलिखित है–

भाषा–गुफाओं में वास करते हुए अनार्यों ने एक भाषा विकसित की, जो प्राकृत भाषा कहते हैं। इसे मोहनजोदड़ो लोग प्रयोग करते थे। इस भाषा से कई भाषाएँ निकलीं हैं। इनमें अनार्यों की भाषा के कई शब्द आज भी हू–ब–हू प्रयुक्त होते हैं–जांग, बैल, छोंड़ा–छोंड़ी, लीलना (निगलना), कांदना (रोना), पितिया (चाचा), डांड़ (कमर) आदि। कुछ शब्द रूप बदलकर प्रयोग किये जाते हैं; जैसे–गर (घर), काना (खाना) आदि। अनार्यों की भाषा की तरह बंगला, असमिया, अंगिका में भी लिंग का क्रिया में प्रयोग नहीं होता है।

लिखावट–अनार्य कन्दराओं में रहते थे, जिसकी दिवारों पर उन्होंने चित्रों के माध्यम से लिखना प्रारंभ किया। इसी लिखावट से अनार्यों ने अंक एवं अक्षर विकसित किये, जिसे खरोष्टि लिपि कहते हैं, जो उर्दू की तरह दायें से बायें लिखी जाती है।

खेती–जंगल को काट–छाँटकर अनार्यों ने ही सबसे खेती पहले करना शुरू किया। आर्यों ने भी इसका अनुसरण किया और खेती को मुख्य पेशा बनाकर जीने लगे।

शस्त्र–भाला, बर्छी, तीर–धनुष आदि हथियार अनार्यों ने ही ईजाद की। आर्यों ने इन्हें भी अपनाया। यहाँ तक कि तीर– धनुष को श्रीरामचन्द्रजी के हाथ में तथा भाला या त्रिशूल माँ दुर्गा के हाथ में देकर अपने इष्ट की महत्ता बढ़ायी।

प्रथा–आर्यों ने बलि देने की प्रथा किरातों से ली, जो आज भी फल–फूल रही है। सिंदूर लगाने की प्रथा भी अनार्यों ने प्रारंभ की थी। दिवाली में आग के चारों ओर घूमकर 'लक्ष्मी घर दलिदर बाहर' जो बोला जाता है, वह भी अनार्यों की देन है। आज भी अनार्य आग के चारों ओर घूमकर अपना उत्सव मनाते हैं।

खेल–झूला झूलना एवं नुक्काचोरी खेल जो आज भी आर्य खेलते हैं, अनार्यों की देन है।

जानवर–अपने जीवन को सुखमय बनाने के लिए अनार्यों ने कई जानवर पाले; जैसे–घोड़ा, बैल, हाथी आदि। आज भी केरल में हाथी मुख्यरूप से पाले जाते हैं एवं उनसे कई तरह के काम लिये जाते हैं। मंदार पर्वत के आसपास सफेद हाथी पाये जाते थे। अनार्यों ने ऐरावत नाम के एक हाथी को इन्द्र को सौंपा था। बाद में आर्यों ने भी हाथी को अपनाया और उससे कई काम लेने लगे। इतना ही नहीं, इन्होंने पूजा–पाठ, सजावट, कहानियों आदि में भी इसका प्रयोग किया। अंग देश में आज भी विवाह के अवसर पर सफेद हाथी की मूर्ति घर के छत–छज्जों पर लगाई जाती है।

धातु का निर्माण–ताँबा धातु की खोज सबसे पहले अनार्य लोगों ने ही की, जिससे कई चीज बनाये गये। बाद में आर्यों ने भी इसे अपना लिया और सबसे शुद्ध धातु कहकर थाली, कटोरे, लोटे आदि बनाए और पूजा में प्रयोग करने लगे। झारखंड के आदिवासियों ने कच्चे लोहे की खोज की, जिससे बाद में पक्के लोहे बनाये गये। पक्के लोहे से कुल्हाड़ी, भाला, बरछी आदि औजार एवं कई तरह के सामान बनाये गये। बाद में आर्यों ने भी इन्हें अपना लिया।

चिह्न–मोहनजोदड़ो के सिक्कों पर स्वस्तिक का चिह्न पाया गया है, जिसमें चार भुजाएँ होती हैं, जो चारो दिशाओं से आनेवाली ऋणात्मक ऊर्जा से रक्षा करती है। इसलिए इसे शुभ कार्यों में प्रयुक्त किया जाता है। इसे बिना परिवर्तन किये आर्य प्रयोग कर रहे हैं।

सिक्का–मोहनजोदड़ो ने क्रय–बिक्रय के लिए सबसे पहले मिट्टी के सिक्कों का प्रयोग किया। बाद में आर्यों ने धातु के सिक्के बनाये।

गोत्र–अनार्यों में यह प्रथा थी कि एक ही गोत्र में विवाह नहीं होता था; क्योंकि इससे विकृत संतान उत्पन्न होने की संभावना रहती थी। वैज्ञानिक दृष्टिकोण से भी यह सही नहीं है। आर्यों ने इस प्रथा को सीधे अपना लिया, जिससे बलिष्ठ एवं बुद्धिमान लोग आज भी पैदा हो रहे हैं।

समुद्रमंथन–विद्वानों ने गहन अध्ययन के पश्चात् यह खोज किया है कि समुद्रमंथन की कथा अनार्यों ने ही गढ़ी है। बाद में आर्यों ने इसे परिष्कृत करके संस्कृत में लिखा और प्रचारित किया।

स्थापत्य कला–भारतवर्ष में स्थापत्य कला के जनक एक अनार्य थे, जिनका नाम मय था। आर्यों ने इनसे इस कला को सीखा और विकसित किया। आर्यों के स्थापत्य कला के प्रणेता विश्वकर्मा कहलाए, जिन्होंने भव्य इमारतों एवं मंदिरों का निर्माण किया। अनार्यों के किले इतने मजबूत होते थे कि उन्हें तोड़ना मुश्किल ही नहीं, नामुमकिन होता था।

भक्ति–भक्ति की भावना सबसे पहले द्रविड़ों में उपजी। दैवी प्रकोप, रोग, सर्पदंश आदि समस्याओं पर वे एक अदृश्य शक्ति की पूजा करते थे। इन्होंने ही कुलदेवता की कल्पना की और उन्हें पूजने लगे। आर्यों ने भी भक्ति

को अपनाया एवं मूर्ति तथा मंदिर बनाकर पूजा करने लगे।

पर्व–त्यौहार–झारखंड के आदिवासी आज भी पंचमी से दसमी तक दासांई पर्व मनाते है। इसी पर्व में परिवर्तन करके आर्यों ने दशहरा पर्व बनाया और रामकथा एवं दुर्गाकथा को जोड़कर इसे सबसे बड़े पर्व का नाम दिया। इसी प्रकार झारखंड के ही आदिवासी दिवाली के समय बांदना पर्व मनाते हैं, जो पाँच दिनों तक चलता है। यह कई पर्वों का मिश्रण है। कृषिकर्म को समर्पित यह पर्व हू–ब–हू आर्यों द्वारा अपना ली गई और सार्थकता देने के लिए कई कहानियाँ गढ़ी गयीं। हुक्का–पाती का खेल सीधे अनार्यों से आया है। होली भी अनार्यों का त्यौहार है। होलिका दहन एवं धूरखेल से प्रतीत होता है कि यह त्यौहार जंगल से निकली है। कुछ लोग तो इसे असभ्यों का त्यौहार कहकर इसकी सार्थकता को और भी बढ़ा देते हैं। जो भी हो, इस त्यौहार में भी प्रहलाद की कहानी को जोड़कर अपना लिया गया। इनके अलावे भी अनार्यों ने कई पर्व प्रारंभ किया, जिन्हें आर्यों ने अपना लिया और आज भी ये मनाये जा रहे हैं। जैसे–घाटो–घटेसर, हिरनी–बिरनी, सामा–चकेबा आदि।

शक्तिपूजा–सिंधुघाटी सभ्यता में माँ दुर्गा की तरह मूर्ति मिली है। इससे विदित होता है कि शक्ति की पूजा अनादिकाल से हो रही है। छठी शताब्दी में आर्यों ने शक्ति की पूजा स्पष्ट रूप से विकसित किया और शक्तियों के मंदिर बनाये गये। मध्यप्रदेश और उड़ीसा मैं चौंसठ योगिनियों के मंदिर हैं, जिनमें मातृदेवी चौंसठ रूपों में दिखाई गई है। कुछ मातृदेवियों का नाम शबरी, पर्णेश्वरी, विंध्यवासिनी, भ्रामरी, शाकम्बरी आदि हैं, जो उनके आदिवासी उत्पत्ति का बोध कराती हैं।

उपनिषद्–ऐतरेय उपनिषद् के नाम से ही ज्ञात होता है कि यह आर्यों के इतर जाति के लोगों ने लिखी है। इसमें जो सृष्टि की कथा कही गयी है, वह मुंडा जाति के लोगों से काफी मिलती जुलती है। इसमें कहा गया है कि पृथ्वी पहले जलमग्न थी। बाद में जल के सूख जाने पर जो जमीन निकली, उसपर अन्न उपजाया गया। संस्कृत में नहीं लिखा होने के कारण आर्यों ने इसे प्रेत–दर्शन नाम दे दिया, परन्तु इसके तथ्य वही हैं, जो आर्यों के हैं।

संगीत–आदिकाल से अनार्य लोग विश्राम के क्षणों में नाच–गाकर अपने जीवन में मधुरस घोलते हैं और मनोरंजन करते हैं। जब संगीत के स्वरों का निर्माण होने लगा, तब आर्यों ने 'नी' स्वर को निषाद स्वर का नाम दिया। निषाद एक आदिवासी जन जाति भी होती है। यह एक द्रविड़ शब्द है। संगीत के कई वाद्य यंत्र अनार्यों द्वारा बनाये गये हैं। जैसे ढोल, मंजीरा, एकतारा आदि।

भविष्यवाणी–अनार्यों ने हजारों वर्षों से अपने ज्ञान के आधार पर कुछ ऐसी भविष्य वाणियाँ दी हैं, जो आज भी खरी उतरती हैं। जैसे अगर चींटियाँ अंडा लेकर चलें तो वर्षा अवश्य होगी। अगर काश के पौधे उग आएँ तो समझना चाहिए कि वर्षा ऋतु का अंत हो गया है।

उपर्युक्त तथ्यों से स्पष्ट होता है कि भारतीय संस्कृति के निर्माण में आर्येतर जातियों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। अनार्यों के कारण ही आर्यों ने देवत्व को प्राप्त किया। माँ दुर्गा, श्रीराम, श्रीकृष्ण और वामन को देवत्व प्राप्त करने में क्रमशः महिषासुर, रावण, कंस और बलि का सबसे बड़ा योगदान है। अधम के विरुद्ध तो पांडवों ने भी युद्ध किया, पर वे देवत्व को कहाँ प्राप्त कर सके। क्योंकि आर्यों से आर्यों की लड़ाई थी। यद्यपि हिन्दू सभ्यता का मूल आर्यों के आध्यात्मिक जीवन में है, पर अनार्यों के जीवन उन्होंने इतना ग्रहण किया है कि हिन्दुत्व से उसे पृथक् करना असंभव है।

संदर्भ– 1. संस्कृति के चार अध्याय, दिनकर
2. साहित्य समाचार, अंक एक जनवरी 2011
3. विभिन्न पत्र–पत्रिकाएँ

लघुकथा :

गन्तव्य

नरेन्द्र किशोर सिन्हा
आदर्शनगर समस्तीपुर
08969358434

मैं और परमेश्वर गाँव के प्राइमरी स्कूल में तीस वर्षों से शिक्षक थे। दोनों में पारिवारिक संबंध। सुख–दुख का साथ। परमेश्वर की धर्मपत्नी का लीवन कैंसर के कारण दो वर्ष पूर्व निधन हो गया था। तीन पुत्रियाँ तथा एक पुत्र उसके परिवार में रह गये थे।

एक दिन स्कूल से लौटते हुए परमेश्वर की साइकिल में पीछे से तेज रफ्तार से आती हुई मोटरसाइकिल ने ठोकर मार दी। परमेश्वर साइकिल सहित सड़क पर गिर गये और मोटरसाइकिल उसे रौंदते हुए निकल गयी। किसी राहगीर ने परमेश्वर को नजदीक के एक प्राइवेट नर्सिंग होम में भर्ती कर उसके घर सूचित किया। परमेश्वर को आईसीयू में रखा गया। कृत्रिम साँस के लिए ऑक्सीजन लगा दी गई।

खबर पाते ही तीनों पुत्रियाँ तथा पुत्र कुलवंत नर्सिंग होम पहुँचे। डॉक्टर ने बताया–मरीज के जल्द ठीक होने के आसार नहीं है। गहरी चोट है। उधर परमेश्वर की सेवानिवृत्ति भी उसी महीने में थी। कुलवंत सोचने लगा, इनकी चिकित्सा पर लाखों खर्च हो सकते हैं। बेरोजगारी के कारण कहाँ से वह पिताजी का इलाज करा पाएगा। अगर पिताजी बीमारी के कारण सेवानिवृत्ति से पहले गुजर जाते हैं, तो उसे कई तरह से लाभ हो सकता है। बीमे का भुगतान, अनुकम्पा के आधार पर नौकरी, ग्रेच्युटी, पीएफ. के अतिरिक्त मासिक पेंशन। उसकी तो दरिद्रता ही दूर हो जाएगी। दिन–रात उसे यही ख्याल आने लगे।

31 जुलाई को उसके पिताजी का रिटायरमेंट था। उसकी हालत में कोई सुधार नहीं दीख रहा था। 30 जुलाई की रात को किसी ने मौका देख ऑक्सीजन की सप्लाई बंद कर दी। सुबह होते–होते परमेश्वर का देहांत हो गया। कुलवंत दहाड़े मारकर रोने लगा, किन्तु अंदर कहीं आत्मतृप्ति का भाव महसूस कर रहा था और वह जल्दी–जल्दी मृत पिता को घर ले जाने की तैयारी करने लगा।

कहानी

मिलन की एक आस

वीणा सिंह
लखनऊ, उत्तर प्रदेश
मो0 8005419950

पति की बीमारी का तार पाकर सुमन अंदर तक कराह उठी, वैसे तो हर क्षण पति वियोग की पीड़ा को मौन रहकर ही सहन करती थी, पर बीमारी का समाचार वह सह न सकी और फफक–फफककर रो पड़ी। छिप–छिपकर रोनेवाली आँखें आज खुद को रोक न सकी और सावन के बादलों की भाँति बरस पड़ी। अश्रुधारा ऐसी बही कि परिवार के प्रत्येक व्यक्ति को विचलित सा कर दिया। माँ, बहन, भाभी, ताई, चाची, भाई सभी ने दौड़कर उसको चारो ओर से घेर सा लिया सभी की जुबान पर एक ही सवाल था कि क्या हुआ?क्या हुआ?वह कुछ भी न बोल सकी, बस हाथ में दबा हुआ पत्र भाई को पकड़ा दिया। सभी ने उसके बहते आँसुओं के दर्द को भाँप लिया और बिना कुछ विचार किये उसे भाई के साथ ससुराल भेज दिया। सुमन का ब्याह बड़ी ही धूमधाम से हुआ था। ब्याह की विदाई पंडित जी के अनुसार एक दिन की ही घड़ी शुभ थी। इसलिए सुमन अगले ही दिन मायके आ गई थी। वह तबसे मायके में ही थी। कई साल बीत चुके थे ससुराल वालों ने उसकी खबर ही न ली थी। मायके में वह सभी की बहुत दुलारी थी। सब उसे बड़े ही प्यार से रखते थे। वह कभी भी किसी को बोझ सी न लगी थी। पर उसके ससुराल वालों के रूखे व्यवहार से सभी चिंतित थे।

सुमन काफी समय के बाद वह भी अकस्मात् ससुराल जा रही थी, सो उसके मन में बड़ी उथल–पुथल मची हुई थी। रास्ते भर वह अपने पति की सलामती के लिए ईश्वर से प्रार्थना करती रही। उसका मन अधीर हुआ जा रहा था कि पता नहीं, वे किस हाल में होंगे। रास्ता तो जैसे लंबा हुआ जा रहा था, उसे अपने अधीर मन को समझाना बहुत ही मुश्किल हो रहा था, फिर भी वह पूरी तरह खुद को तसल्ली दे रही थी कि तू थोड़ा संयम रख। उसके पास पहुँचकर जी जान से उनकी सेवा करूँगी और वह जल्दी ही स्वस्थ हो जायेंगे। फिर हम दोनों एक दूसरे पर प्यार लुटायेंगे और हमेशा एक साथ रहेंगे। बहुत दूरियाँ सह ली, अब कभी भी उनसे दूर नहीं जायेंगे। रास्ते भर वह यूँ ही ताने–बाने बुनती रही।

ससुराल पहुँचते–पहुँचते उसे शाम हो गयी। घर पहुँची तो वह हैरत में थी, वहाँ पर सब कुछ सामान्य था। ननद खाना बना रही थी। सासू–माँ लिहाफ सिल रही थी। ससुरजी चौपाल पर हुक्का गुड़गुड़ा रहे थे। सब के सब शान्त तथा अपने–अपने काम में मशगूल थे। अंदर से जिठानीजी निकली तो भाई से पलंग पर बैठने को कहा। सुमन के लिए भी आसन बिछाते हुए बैठने का इशारा किया। जेठानी के बच्चे छिप–छिपकर सुमन को देख रहे थे और आपस में कानाफूसी कर रहे थे कि माँ ने बताया यह चाचीजी हैं और जो साथ में आये हैं वह मामाजी हैं। सुमन ने बच्चों को पास बुलाया, दुलार किया और मिठाई खाने को दी। सुमन ने मन ही मन विचार किया कि शायद इनकी तबियत ठीक हो गई है, इसीलिए सब चिंता मुक्त है और अपने–अपने काम में लगे हैं। पर पतिदेव है कहाँ?उसकी आँखें लगातार खोज रहीं थी। तबतक भाई ने जेठानी से पूछ ही लिया कि जीजाजी कहाँ है, उनकी तबियत कैसी है?हम सब तो बीमारी का समाचार सुनकर परेशान हो गये थे। इसपर जेठानीजी ने कोई उत्तर न दिया। अब तो वह शंकाओं आशंकाओं के बीच घिरने लगी। आखिर बात क्या है, सब मुझसे क्या छिपा रहे हैं। बात को संभालते हुए सासू माँ ने कहा कि वह अपने कमरे में दवाई खाकर सोए हैं। डॉक्टर ने आराम करने को कहा है। इसलिए उसे अभी न जगाना। सुमन शान्त मन हो गई सोचा नींद से जगाना ठीक भी नहीं जब रात को मिलूँगी, तब हाल पूछूँगी और ढेर सारी बातें भी करूँगी। रात को सभी खाना खा–खाकर अपने–अपने कमरों में सोने चले गये। पर सुमन जब से आई थी चुपचाप उसी जगह पर बैठी थी। कुछ देर बाद ननद ने थाली परोसकर सामने रख दी खाना खाने के बाद वह कमरे की राह ताकने लगी। पर ननद ने कहा भाभी आओ मेरे साथ सो जाओ। वह सकुचाई सी ननद के बाद वह कमरे की राह ताकने लगी। वह सकुचाई सी ननद के पास लेट तो गई पर नींद कहाँ?जिसको देखने के लिए वर्षों से आँखें प्यासी थी, वह पास आकर भी प्यासी रह गई थी। वह असमंजस में थी कि क्या वास्तव में वह इतनी गहरी नींद सो रहे हैं, जो कि मेरे आने का उन्हें आभास तक न हुआ। या फिर वह किसी बात से नाराज है, जो कि मुझसे मिलना नहीं चाहा। यही सोचते विचारते रात बीत गयी। सोना तो दूर उसकी आँखों ने एक बार झपकी तक न ली।

सुबह भाई के वापस घर चले जाने के बाद सासू माँ घर के सारे काम समझाकर पड़ोस में चली गई। घर के कामों में उसका मन नहीं लग रहा था। बार–बार उसकी आँखें बंद कमरे पर जाकर ठिठक जाती कि पता नहीं।

कब वो सोकर जागेंगे जब मैं उन्हें देख सकूँगी। वह भी मुझे देखकर हतप्रभ रह जायेंगे, उन्हें मालूम तक नहीं कि मैं आ गई हूँ। बहुत रोकने पर भी मन न माना। धीरे से उसने दरवाजा खोलकर झांका तो कमरा खाली देखकर सन्न रह गई। जो बंद कमरा उसके कौतूहल का विषय बना था, वह खाली था। अब तो अनगिनत प्रश्न उसके मन में कौंध गये। यदि मेरे पतिदेव कमरे में नहीं हैं, तो फिर है कहाँ?क्यों सब मुझसे झूठ बोल रहे हैं। आखिर सब लोग मुझसे छिपा क्यों रहे हैं?सुमन इसी ऊहापोह में थी कि पति ने घर में प्रवेश किया। सुमन शीघ्रता से पास गई और पाँव छूकर कहा–आप कहाँ थे, आपकी तबियत कैसी है?माँ ने तो बताया कि आप दवाई खाकर सो रहे हैं, उन्हें न जगाना। इसलिए मैं.... पति ने बीच में ही कड़क आवाज में रोका–चुप। मुँह क्या खोला कि सवाल पर सवाल किये जा रही। इतनी पूछताछ तो मेरी माँ नहीं करती और तू कौन होती है, कहाँ गये थे, कब गये थे, पूछनेवाली?कहते हुए वे अपने कमरे में चले गये। सुमन सहम सी गई। उसका सुन्दर मन कुम्हला सा गया। फिर भी स्वयं को संभालते हुए अपनी ही गलती मानी, सोचा शायद मैं अचानक कुछ ज्यादा ही बोल पड़ी, इसीलिए उन्हें गुस्सा आ गया। चलो, कोई बात नहीं, आज रात को प्यार से मना लूँगी। रात को फिर उसे ननद के कमरे में ही सोना पड़ा। वह पति से मिलने को बेचैन थी। स्वयं को वह रोक नहीं पा रही थी तो वह चुपके से पति के पास जाने के लिए उठी, पर ननद ने टोककर पूछ दिया–क्या बात है भाभी जी! कुछ चाहिए था क्या?कुछ नहीं, कहकर वह चुपचाप अपने स्थान पर लेट गई। उसे रात को कई बात उठकर जाना चाहा, पर हर बार ननद ने टोक लगा दी। तब उसे

लगा कि ननद उसकी पहरेदारी कर रही है। सुबह हुई तो फिर घर के कामों में लगा दी गई। बस ऐसे ही दिन और रातें बीतने लगीं। दिनभर की थकान के बाद भी उसे रात को नींद नहीं आती। कभी वह अपनी वर्तमान स्थिति पर आँसू बहाती तो कभी अतीत में खोती चली जाती। वह मिलन की पहली रात उसके जहन में जिंदा हो लेती। सब कुछ उसकी आँखों के सामने मानो हू–ब–हू चित्रित होने लगता। उस रात की प्यार भरी वह सौगात उसे अंदर तक गुदगुदा देती। कितना प्यार कितना अपनापन कितनी खुशियाँ। पति का पहला आलिंगन याद कर उसे लगता जैसे सारा संसार सिमटकर उसके आंचल में समा गया हो और अगले ही क्षण वह खुद को अकेला पाती। प्रसन्नता के भाव अचानक ही शून्य में विलीन हो जाते। तब उसे लगता है सारा संसार उदास है और उसकी आँखों में आँसू बादलों की तरह मड़राने लगते। वह सोचती ही क्या उन्हें वह मिलन को अधीर हूँ, वैसे ही उनका मन मुझसे मिलने को व्याकुल क्यों नहीं हो उठता?क्या वह रंगीन रात एक छलावा थी?पर क्यूँ आखिर मेरा कुसूर क्या है?यह सारी बातें वह स्वयं से करती रहती उसकी व्यथा सुनने समझने वाला वहाँ कोई न था। अनगिनत प्रश्न उसके मन में उमड़ते–घुमड़ते रहते, लेकिन एक प्रश्न का भी उत्तर उसे नहीं सूझता।

अब तो उसका दिन–रात के इंतजार में बीतता कि क्या पता आज की रात उनसे मिलन की रात हो जाए और रात सुबह होने के इंतजार में बीतती कि शायद आज वह मुझे प्यार से निहारे। बस इसी तरह दिन और रात बीतने लगे। पर एक मिलन की आस उसे हर संभव समझौता करने के लिए विवश कर रही थी। वह कुछ भी सहने को तैयार थी, बस उसे अपने पति के प्यार की चाह थी, जो कि उसके नसीब में नहीं था। घर में केवल दादी माँ ही उससे ठीक से बात करती थी,बाकी सब या तो बोलते ही नहीं और यदि बोलते तो झिड़की देकर। एक दिन दादी को अकेला पाकर सुमन ने पूछा कि घर के सभी सदस्य मुझसे क्यों असंतुष्ट हैं, कोई मुझसे बात क्यों नहीं करता?दादी भी दबे शब्दों में आधी अधूरी ही बात बता सकी कि तुम्हारे बाबूजी ने दहेज की पूरी रकम नहीं दी, इसीलिए तुम्हें इतने दिनों तक मायके में रहना पड़ा और जब खुद से आ गई हो तो कोई तुम्हें स्वीकार नहीं रहा। पर पिताजी के लिए और दहेज दे पाना संभव नहीं है। सुमन ने दुखी मन से कहा कि मेरे विवाह में पिताजी ने अपनी हैसियत से दुगुना सामान दिया, वे और भी देना चाहते थे, परन्तु भाई की पढ़ाई और छोटी बहन के ब्याह की जिम्मेदारी की वजह से वह विवश है। इसका मतलब यह तो नहीं कि मुझसे नाता तोड़ लिया जाए। सुमन हतप्रभ थी कि दहेज के कारण मेरे पति ने मुझे अपने से दूर रखा और वजह तक न बताई। यह कैसा उनका प्यार है, जिसे चंद पैसों ने रोक दिया। वह अपने पति तथा परिवारवालों के इस ओछी सोच और दुर्व्यवहार से बहुत आहत हुई। मन में आया कि वापस घर चली जाऊँ पर कैसे चली जाती पिया मिलन की आस ने उसे रोके रखा। अगले ही दिन पिताजी को पत्र लिखकर सारी बात बताई और बाकी रकम देने का आग्रह किया। सुमन अपने नाम के अनुरूप ही सुन्दर मनवाली सहज और सरल भी थी और पति के प्रेम की प्यासी भी।उसने सोचा कि यदि पिताजी पूरी रकम दे जायेंगे, तो वह अपने पति का सान्निध्य पा सकेगी। बाबूजी और दहेज दे पाने में असमर्थ थे, फिर भी बेटी का भविष्य बिगड़ता देख बड़ी ही मुश्किल से पैसों की व्यवस्था करके बाकी रकम भी दे गये।

आज सुमन बहुत प्रसन्न थी, उसके मन में पिया मिलन की आस जो जाग उठी थी। उसे लगा कि मेरे और उनके बीच की अड़चन समाप्त हो गई। इन्हें दहेज की पूरी रकम मिल गई। अब तो इनकी सारी शिकायतें दूर हो गयी, अब हम दोनों एक होकर रहेंगे। वह आत्मविश्वास से भर गई और अपने पिया से मिलने की तैयारी में लग गई। आज उसे सजने सँवरने में कोई कसर न छोड़ी। हाथों में लाल चूड़ी, माथे पर टिकुली कान में झुमके नाक में नथुनी, पैरों में पायल। हर अंग को उसने प्यार से सजाया। लाल जोड़े में वह नई नवेली दुल्हन सी लग रही थी। उसके चेहरे पर आज अनोखी चमक तथा मन में तीव्र उमंग थी। वह शीशे में स्वयं को देखकर शर्म से सुर्ख हुई जा रही थी। वह बार–बार खुद को निहारती कि कहीं कोई कमी तो नहीं रह गई। वह प्रयासरत थी कि जब वह मुझे देखे तो अवाक् रह जाए और मेरे सौंदर्य में ऐसे डूबे कि फिर कभी निकल ही न पाये। आज वह ननद के पास न जाकर अपने पति के कमरे में शान से बैठी थी। बार–बार उठकर दरवाजे से झाँक रही थी। आज उससे देरी सही नहीं जा रही थी। जरा सी आहट होती तो वह हया से सिकुड़ जाती, उसे लगता कि वह आ गये। उनकी मौजूदगी न पाकर उदास हो जाती। इंतजार के अतिरिक्त कोई दूसरी राह भी तो नहीं थी। इसी तरह पूरी रात वह ताकती रही पर पति का पदार्पण न हुआ। रात का अंधेरा तो छटने लगा पर उसके हृदय में घनघोर अंधकार छाने लगा। उसका खिला चेहरा मुरझाने सा लगा तथा सौंदर्य का आभामंडल क्षीण होने लगा। जो आँखें प्यार बरसाने को उतावली थी उनसे आँसुओं की बरसात होने लगी। उसका हृदय जो अबतक उसके बस में नहीं था, अब व्यथित, शांत तथा खुद से छला–सा महसूस कर रहा था। सुमन एक बार फिर बिना आवाज की चोट से लहूलुहान हो गयी थी। जब से वह ससुराल आई थी, हर रोज अपमान के घूँट पी पीकर रह जाती थी। पर आज इस अपमान से वह तिलमिला उठी थी। बाहर चहल–पहल सुनकर वह अनमने मन से उठी और अपने जिन हाथों से उसने स्वयं को सजाया था, उन्हीं हाथों से मिटाने लगी। आज उसने तय कर लिया कि अब वह और न सहेगी।

बहुत चुप रह लिया, अब और चुप नहीं रहूँगी। आज वह जिस समय भी आयेंगे मैं उनसे अपने हर सवाल का जवाब लेकर रहूँगी। अब तो मेरे पिताजी ने देहज भी पूरा दे दिया है। फिर क्यों वह मुझसे अलग–थलग हैं?आखिर उन्हें मुझसे क्यों अलगाव हो गया है। क्या कमी है मुझमें?मुझे तो उन्हीं ने पसंद किया था और कहा भी था कि यदि संसार में कुछ सुंदर है तो वह सिर्फ तुम हो। मैं तुम्हारा साथ पाकर धन्य हो गया हूँ। परन्तु ऐसा क्या हो गया कि वह मुझे देखना तक नहीं चाहते?सुमन ऐसी ही अनेक बातों में उलझी हुई थी कि किसी के तेज कदमों की आहट ने उसका दिल धड़का दिया। अगले ही क्षण पति को सामने खड़ा देख वह हतप्रभ हो गयी। पति के साथ एक बांकी छोरी थी जो कि नैन नक्श से काफी आकर्षक थी, पूरी सजधज के साथ मांग में सिन्दूर और गले में मंगलसूत्र भी पहने थी। पति ने उसका हाथ बड़ी मजबूती से पकड़ रखा था। सुमन कुछ समझ पाती या कोइ प्रश्न कर पाती, इससे पहले ही पति ने सारी स्थिति को स्पष्ट कर दिया। उसने सुमन से बताया कि जब तुम्हारे घर से दहेज के बचे पैसे देने की कोई खबर नहीं आई, तब मुझे लगा कि वह लोग तुम्हें वहीं रखना चाहते। इसी बीच यह (लड़की की ओर इशारा करते हुए) मेरी जिंदगी में आ गई।मैंने इससे विवाह कर लिया, अब यह ही मेरी पत्नी है। मैं तुम्हें अपनी पत्नी नहीं मानता। मैंने वर्षों पहले ही तुम्हारा परित्याग कर दिया। तुम चाहो तो यहाँ रहो और न रहना चाहो तो अपने बाबूजी के पास चली जाओ। ऐसा कहकर वे दोनों तेज कदमों से अपने कमरे में चले गये। सुमन काफी समय तक एक ही जगह पर बैठी अपने चारो तरफ सन्नाटे को एकटक निहारती रही। आज उसने मिलन की आस छोड़ दी।

कहानी

सच साहब

विद्यालाल
अशोकनगर, पटना
मो० 9162611963

कहते हैं प्रेम एक नशा है। ये भी कहते हैं कि खूरबूजे को देखकर खरबूजा रंग बदलता है। नहीं साहब! बे पर नहीं उड़ा रहा। सच्ची कह रहा हूँ। सच्ची कह रहा हूँ, सच्ची! बचपन से ही कहानियाँ पसंद रही एक तो जासूसी कहानियाँ। बाप रे! कहाँ का बालू कहाँ का रोड़ा, भानूमती ने कुनवा जोड़ा। कहाँ का कहाँ लाकर जोड़ते हैं ये लेखक। मजा बड़ा आता है। रहस्य की परतें तो घनी ही हुई चली जाती है परत दर परत, पर पता ही नहीं चलता। क्या हो रहा है?क्यों हो रहा है?कौन कर रहा है?बस घटनाएँ घटी चली जा रही हैं और हम साँस रोके चुगद या चोंचू की तरह आगे बढ़े जा रहे हैं। समझ में तो कुछ नहीं आ रहा है। कुछ भी नहीं, जरा सा भी नहीं। लाख कयास लगा रहे हैं, पर कर्नल के होंठ तो गोल हो गये। कुछ याद आया?अरे वही कर्नल रंजीत की सीटी कर्नल को तो पता चल जाता था न पैतरें का। उड़ता कैसे?और कहाँ तक?पर पाठक बिचारे को क्यों पता चलना था। उसे तो खनक समझ नहीं आती थी, पर पाठकों ने भी कोई कच्ची गोलियाँ नहीं खेलीं। नहीं, कैसे समझ आएगी बात। सबर तो होता नहीं था, तो कर दी उलटी गिनती। हाँ, हाँ वही। पन्ने ही पलट दिये। नहीं पूरी किताब और अंतिम के तीन–चार पन्ने धड़ाधड़ पढ़ लिये। आधी की, तब खत्म करके तो कभी वो तिहाई, तो कभी–कभी तो एक तिहाई पूरी होते न होते। बड़ा बेसबरा शमाँ रहता था। जान ही लिया कि कौन गुस्ताख है तो मंगण का फालूदा किये दे रहा है।

पर ऐसी बात कहाँ बनती थी। बात तो तब ही बनती थी, जब पूरी किताब पढ़ ली जाए। पर आप तो गवाह हैं, कितना मजा आता था न?नयी किताब आई नहीं कि दीवाना बन सब भूले। खत्म करके ही उठे थे?आपने नहीं पढ़ी?कोई बात नहीं कर्नल रंजीत को नहीं पढ़ा हो, पर कूचे में और भी तो सह अक्षर थे। वो एक... इसमें सफी साहब भी तो थे। बाप रे! पाठकों की दुनिया में तो इनके किरदार ही घूमते रहे। कैसी अजीब दुनिया थी, इनकी और कैसी अजूबा हरकतें। तू डाल डाल मैं पात पात वाले। अरे! बहक नहीं रहा भई, बता रहा हूँ वो, दूसरी पसंदवाली बात भी। अब बताने बैठा ही हूँ तो बताऊँगा ही न! दूसरी पसंद वाली बात भी और वो खरबूजे वाली बात भी। नहीं साहब! इतनी जल्दीबाजी तो न कीजिए। फैसलामाकूल होना अच्छी बात तों है, पर आज तो सोच रहे हैं, वो वाली बात नहीं। हरगिज नहीं। क्योंकि खरबूजे की रंग बदलनेवाली बात भी एक हद तक ही सही हो सकती है। कम से कम इस खासकर खरबूजे की तो हद है ही। इस खरबूजे में वो हुनर तो है ही नहीं न?जासूसी का क,ख तो आता नहीं। मात्राएँ, व्याकरण और शिल्प तो दूर बात ठहरी। हो सके तो मैं वो कहानी सुनाने जा रहा हूँ, जो में सुना सकता हूँ। अरे नहीं साहब! कुछ नहीं भूला–बूला मैं। हाँ लाइनें जरा आगे पीछे हो गई बस। दूसरी तरह की कहानियाँ जो मुझे पसंद थी, वो प्रेम कहानियाँ थीं। हूँ, हूँ फिर गडबड़ हो गई। प्रेम कहानियाँ तो सबको पसंद होती है, है न?सबको, हाँ सबको। चाहे प्रेम किया हो, चाहे न किया हो। प्रेम लफ़्ज सुनते ही मन का मौसम एकबारगी बदल जाता है। कितना अच्छा लगता है प्रेम कहानी पढ़ना, पर्दे पर देखना या समाचार पत्रों में छपी खबर या फिर महल्ले में प्रेम की उठती धमक। कुछ याद आया आपको?आपने भी तो खैर, जब मर्जी हो पूरी ईमानदारी से साझाकर लीजिएगा। मुझे बहुत अच्छा लगेगा। मैं इंतजार करूँगा। अब तो पता है न, मुझे प्रेम कहानियाँ बहुत अच्छी लगती हैं। कभी भी, कहीं भी, कितनी भी।

मन ऊबता ही नहीं, प्रेमगली में वैसे तो किसी तीसरे की जरा गुजर नहीं पर प्रेम कहानियाँ तो दूसरों की भी उतनी ही उत्कंठा और बेचैनी जगाती है, जितना अपनी माहे गुल की बातें। उस परीजाद का जिक्र। तभी तो ये भी कहते हैं कि उसकी तड़प में भी वही नशा है, जो विशाले सनम में। सबको पता है, इसके कूचे से तो सब गुजरते हैं। कोई खामोश कदमी से, चाहे कदम दो कदम, चाहे इस दमक से कि जमाना चूँ भी नहीं कर पाता और किला फतेह। पीढ़ियाँ गुनगुनाती हैं और महल्ला कलमा पढ़ता है। ऐ काश!

खैर बात मैंने शुरू की है तो मैं ही सुनाता हूँ। ये कहानी दिल की बेकली की कहानी और जैसा कि दस्तूर है, समर्पण है, तो ये कहानी समर्पित है, उस 'नजर' को जिससे मिलते ही पूरी कायनात बदल गयी थी। उस जालिम में कुछ बात तो थी। क्या बताऊँ, कैसा था ये प्यार, जिसे पाकर मैं दो जहाँ का मालिक बन गया था। क्या दूँ परिभाषा?कौन सी जुगत करूँ?इस प्यार की तो कोई परिभाषा ही नहीं होती न?प्यार तो बस प्यार होता है। कौन कह सका है भला कि इसके कितने रंग हैं या कि कितने रूप धरे हैं ये नामुराद?दुनिया में जितने शख्स हैं, सबके ही तो अंदाज अलग है। सबके तजुर्बे जुदा। प्यार में सब झोल, सारे सिरे उलझे अटके। कोई उम्र भी मुकर्रर कहाँ?पंद्रह है कि पचास?किसी का भी तो मोहताज नहीं है, ये बेताज का बादशाह। न उम्र का, न रूप का, न रंग का और न मुए दौलत का। दौलत की सारी हेकड़ी, सारी तानाशाही तेल लेने जाती है, इस 'जालिम नजर' के पीछे। पर सारे जानते हैं कि इस प्यार को भी एक जगह जाके मजबूर हो जाना होता है। बिल्कुल ठीक। सौ टका सच। आपने सही समझा। वही वाली उमर! अच्छे श्रोता हैं आप, सारा झाल, उलझन और अटकाव बँट जाते हैं। दा, लोगों का प्रेम एक होहक 'देवता' बन जाता है 'मालिक' जिंदगी। सर्वोपरि उसके आगे कुछ नहीं दीखता। कुछ भी नहीं। घर नही। बाहर नहीं। झूठ नहीं। सच नही। उसकी ता धिन पर नाचना होता है, बस...।

तो मैं भी नाचा न साहब! खूब नाचा। सोलहवाँ बसंत आया और मुझे रोगी बना गया। मैंने लाख जतन किये, लाख छुपाया, लाख इंकार किया खुद से भी, पर जादू तो चल गया था। रोग तो लग गया था। उमंगे जवान हो रही थीं। हसरतों और रानाइयों के दिन थे और वो चेहरा आँखों से होकर दिल में उतर गया बिना मुरब्बत, बिना लिहाज, बिना इजाजत। या खुदा। मैं भला क्यों करता। वो तो बाद में जाना जब लख्ते जिगर को भी ये रोग लगा। पर मैं तो मैं था। मैं क्यों पाबंदियों की फेहरिस्त जारी करता?मैं क्यों लानत मलामत करता?न अपनी बारी खुद को रोक पाया न उसकी बारी पर उसको कुछ कहा गया। मैं तो अब जानता हूँ न साहब! कोई न कोई तो हर किसी को लगता है प्यारा और तेरी–मेरी उम्र में किसने ये किया नहीं! आप भी तो जानते ही हैं। हँ... हँ...हँ ...हँ। क्या दिन होते हैं न?दिन जो जिंदगी में एक बार ही आते हैं और फिर उस तरह से तो अच्छा लगता है अपना पागलपन। वो भी क्या दिन थे, जब पागल–पागल सा फिरते थे। हम क्या अकेले होते थे कभी?उस वक्त, हर वक्त वो माहेरूख साथ होती थी। चाहे सामने कोई हो, जगह कोई सी भी हो, कितनी हँसी आती थी तब। साँसों में शामिल, दिमाग में पैबस्त हर जगह। क्या तो तानाशाह पिता क्या तो इबादतगाह। पर्दादारी कहाँ थी। कहते हैं न ''इश्क खुदा है, पर मानते नहीं।'' मान जो जाते?

पर कितने तो खीज जाते हैं, कितने समझायेंगे। कितनी रुकावटें?कितनी पाबन्दियाँ?पर फिरकापरस्त, नियम–कानून में जकड़। समाज हाथ मलता रह जाता है। कोई जोर नहीं चलता। किस्सें शुरू हो ही जाते हैं। नियम तो बस जिस्म पर आमद होते हैं, रूह तो आजाद होती हैं। कहते हैं इश्क अहसास है ये रूह पे महसूस करो और सच तो ये भी हैं कि ये नियमवाले कायदे का फायदे से ओढ़ने–बिछाने वाले भी कभी इसी नजर के लिए तड़प उठते हैं। इस नामुराद इश्क के अहसास में भींगने की खातिर नाशु के नापाक और काफिर हुए जाते हैं। काश! ये लज्जतदार गुनाह हमने भी किया होता।

काश, काश, काश! हाँ तो मैं बता रहा था कि मैं भी नाचा था। अरे साहब! मैं भी अपने बाप का लख्ते जिगर ही था। इकलौता चिराग! पर उससे क्या? जान तो एक क्या सौ इजहार फस फस। पसीने छूट रहे हैं।

उसने इंकार कर दिया तो? किसी ने देख लिया तो, किसी को पता चल गया तो? अपनी साहब! हिम्मत ही नहीं होती थी कि उसे अपने धड़कनों का पता बताता इकलौता चिराग था। टोला–महल्ला, रिश्तेदार सबकी नजर रहती थी। खानदान का नाम रौशन करना था। पीढ़ियों की ताबेदारी करनी थी। शरीफ होना था, प्रेम प्यार के किस्से नहीं बखानने थे। देवदास नहीं बनना था। लिल्लाह। कैसी मलामते। धड़कनें बेकाबू हुई जा रही हैं तो हों बला से। आपको पूरजोर काबू में दीखना ही होगा। दीखते ही थे न! दीखना ही था न! चाहे गले तक प्यार में डूब चूके थे। जब उसे ही भनक नहीं लगने दी, बस बेबकूफों की तरह देखा कि ये आँखें फाड़े तो मोहल्ला–टोला, परिवार, खानदान को काहे की भनक। अजब सनक थी साहब तब तो! अजब था समाज और अजब थी, उसकी नामाकुल रिवायत। अब तो हमारे लखने जिगर पर कोई बंदिश ही नहीं।

जिससे चाहे ब्याह करें। जाति–धर्म का कोई उम्र नहीं, हमें ना ही हमारेवाली शुरुआती हिचक कि न जीते थे, न मरते थे। मोबाईल है। स्कूल–कॉलेज में जब भी चाहे बात करें डिलीट करें। घर में भी मैसेज करें, डिलीट कर लें। पर मैं तो खून के आँसू रोया साहब! जबान ही नहीं खुलती थी और ना ही कलम चलती थी। भाषा तो थी। इतने रिसाले पढ़े कि मजमून तो धड़ाधड़ दौड़ते रहते थे, पर चिट्ठी भेजना भी तो मुहाल था। कौन था जो राजदार होता? फिर चिट्ठी किसी के हाथ पड़ जाती तो सात पुश्तों की गत बन जाती थी। ये हिमाकत तो मेरे बूते की बात नहीं थी। प्रेम करे ऊ जिसकी जेब में माल बाड़े बलमू... गलत कहा है जी। अब आप इसे यूं पढ़ें

इश्क के रे ऊ जिसके हिये में जिगर है रे बलमू...।'' मेरा अनुभव तो यही है, फिर मैंने तो पहले ही अर्ज किया है। जितने लोग उतने किस्से, उतने तजुर्बे। तो खैर... फिर उन्हीं दिनों में 'मेरी जां' की पड़ोसन सावित्री मुहल्ले में अपनी नादानी में लोगों की निगाह में चढ़ गयी और इसी प्रेम के चलते उसकी पढ़ाई भी छूट गयी और पता चला कि रातोंरात सावित्री के जीजाजी आकर उसे गाँव लेकर चले गये। उसका ब्याह कराने को। हमेशा के लिए टंटा ही खत्म। मेरी तो रूह काँप गई। मैं ऐसा नहीं होने दे सकता था। कभी नहीं। किसी सूरत में नहीं। हर समय दिमाग में उसका दबदबा था, पर मैंने ठान लिया था, उसे बदनाम नहीं होने दूँगा। मैं उसे अपने सीने में महफूज रखूँगा। किसी को पता नहीं चलेगा। धूआँ तो धूआँ, लपटें मेरे दिल में कितनी ऊँची उठी थीं और कबतक जलती रही थी। आज भी आँख मूँदता हूँ तो उतनी ही हसीन, इतनी ही काबिज, उतनी ही पुरसुकून छवि देख लेता हूँ। वैसी की वैसी। न उम्र ही छू गई है और न कोई बेदिली वाली बात। वो भी एक पल का किस्सा था, ये भी एक पल का किस्सा है। तो जनाब।

मेरी प्रेम कहानी तो यही है। यानी मेरा किस्सा और मेरे लख्ते जिगर का भी एक किस्सा शुरू है। अब आप बताइए, आपकी क्या राय है? मेरी प्रेम कहानी तो मैंने प्रेम कहानी की तर्ज पर बयाँ कर दिया। क्या प्रेम कहानी नहीं है? मुझे तो प्रेम हुआ था न? वो नजर जिससे मिलते ही लगा था.... पूरी कायनात बदल गयी। ये भी समझा था ... मुझे इश्क का लगि या रोग। सच साहब! तब तो लगता था, समझ रहा हूँ, समझ रहा हूँ कि वो किस्सा तो शुरू हुआ भी, नहीं भी। खत्म हुआ भी नही, पर सच साहब! तब तो लगता था मैं मर जाऊँगा।

कविता

मेरा बच्चा बनाम लोकतंत्र

–डॉ. आशा 'पुष्प'
बोकारो इस्पात नगर,
मो. 9431739045

सखि! निरख तो सही
मेरा बच्चा
कितना सलोना और सयाना है
तभी तो सबके मन को भाया है
जब से जन्मा है
कछुआ सा बना है
दुनिया के ना जाने कितने रंग
देखें हैं इसने
फिर भी
यह अपने अनोखे रंग में सना है
आवाज सुनी थी उसने
तेरे भी बेटे के भारी भरकम बूटों की
गुरुर से हँसता
आकाश को नापता देखा था
झरोखे वाली के बेटे को भी
चीरता रौंदता देखा था उन्हें
असीम सागर की बज्र छाती को
दिगन्त को कँपाने वाला
विश्व को घोंघे सा
मुट्ठी में भींचने वाले
स्वप्नदर्शियों की विद्रूप क्रूर हिंसात्मक
आँखों की दहकती लपट की
महसूसा था दोनों की
फिर भी कभी नहीं डरा, न हारा
'मेरा लाल' उस बाजीगरों से
न ही भरमाया, किसी के
हीरे लगे जूते कपड़ों पर
क्योंकि सखि
यह तो ध्रुव सत्य है
कि इसके जन्मते ही चंदा मामा
सोने की कटोरी में
दूधभात लेकर आया था
साथ लाया था
एक मृत्तिका पात्र और कुश की चटाई भी
सखि! तुमने नहीं किया लालन–पालन
सही ढंग से अपने बेटों का
अरी, मुँह मत बिचका
मेरे बेटे को देखकर
विकलांग (दिव्यांग) ही सही
पर तेरे बेटों ने तो
उसकी ही सद्भावना शान्ति और
अध्यात्म को सर झुकाया है।

गज़ल

मैंने तो प्यार की दुनिया में कदम रखा है
राहों में फूल या कि शूल मिले
मैंने भी उन पे इठला के कदम रखा है
सोच के निकली हूँ, विश्वास समंदर पाने
इसलिए मौजों के सीने पर कदम रखा है
मुझको साहिल न मिले या कि मेरी मंजिल साथी
आँधी तूफाँ की भी परवाह नहीं रखा है
जब जब दर्पण में अपने आप को देखा मैंने
अपने ही तन में तेरी रूह छिपा रखा है
मिटती हो हस्ती या कि खफा हो कुदरत सारी
मैंने तो हँस के सिर, कदमों में तेरे रखा है।

समीक्षा

सामाजिक संघर्ष से युद्ध करती कहानियाँ : महेन्द्र नारायण पंकज

डॉ. डी.एन.प्रसाद
वर्धा
मो ० 7152230901

बोधि प्रकाशन, जयपुर से प्रकाशित महेन्द्र नारायण पंकज जी का दूसरा कहानी–संग्रह है युद्ध! इन कहानियों में वस्तु वैविध्यता है, कहानियों में समाज के विभिन्न परिदृश्यों, चरित्रों, समस्याओं और संघर्षों को दिखाया गया है। आज का मनुष्य किन दर्द और मूल्यों से गुजर रहा है, इसे बड़ी सादगी और गहराई से लेखक ने अपनी कहानियों के माध्यम से पाठकों के सामने प्रस्तुत किया है।

'युद्ध' कहानी संग्रह में पन्द्रह छोटी–बड़ी कहानियों के माध्यम से आज की वर्तमान परिस्थितियों में संघर्ष और समस्याओं को उजागर किया गया है।

पहली कहानी युद्ध है, जिसमें दिखाया गया है वर्तमान परिवेश में मूल्यों के स्खलन तथा राजनीति के बदलते अर्थ को। वर्तमान में छल–कपट, कुटिलता, क्रूरता और किसी भी प्रकार से सत्ता पर कब्जा कर लेना यही मनुष्य का परम धर्म हो चुका है। इसे ही महेन्द्र नारायण पंकजजी ने दिखाने की कोशिश की है।

'इलेक्शन' कहानी में लेखक ने आज के वर्तमान समय की चुनावी प्रक्रिया का पर्दाफाश किया है। लेखक ने दिखाया है कि किस प्रकार पार्टियाँ अपने स्वार्थ के लिए भोली–भाली जनता का उपयोग करती हैं। चुनावी प्रक्रिया लोकतांत्रिक मूल्यों को प्रतिष्ठित करती है; लेकिन राजनीतिक दल अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए इसका गलत उपयोग करते हैं, जिससे समाज में अव्यवस्था और आपराधिक मूल्यों को बढ़ावा मिलता है। लेखक ने इस कहानी के माध्यम से जनता होने का उपदेश दिया है, जिससे आपराधिक प्रवृत्ति के लोग चुनावों में विजयी न होने पायें। इसलिए कहानी में लेखक ने नौजवान के माध्यम से अत्याचार न सहने को कहा है–

''आजादी क्या मिली देश को इन अफसर, पुलिसवालों का अपना मन हो गया है। जायज–नजायज कुछ करें। अब यह सब नहीं चलेगा।....''

'वेणु का दर्द' कहानी में लेखक ने आरक्षण से जुड़ी हुई विसंगतियो को दिखाने का प्रयास किया है, जहाँ आरक्षण का उद्देश्य सदियों से शोषित–पिछड़े एवं गरीब समाज को अवसर प्रदान करना था, परंतु आज यह राजनीति वोट बैंक बन गया है, जिसे राजनेता परिचालित करते हैं। आज का युवा ऐसी गंभीर समस्याओं पर चिंता जाहिर करते हैं। कहानी में विनय जैसा पात्र जो ऐसी समस्या से सामना करता है, तब भी उसे जाति के मामले में वेणु के परिवारवालों के सामने बहिष्कृत किया जाता है। वही अगर वेणु महिला होकर बोलना चाहती है तो उसे अपनी ही माँ द्वारा चुप कराया जाता है। लड़की को अगर माँ–बाप पढ़ाते हैं तो उसे ताने सुनाने में भी नहीं चुकते। जैसी कहानी में वेणु की माँ कहती है–''ई छौड़ी कॉलेज में जब से पढ़ने लगी है, तब से हमको सिखाने लगी है। बिना मार के यह ठीक नहीं होगी हरजाई।''

वर्तमान समाज में जहाँ अभिभावक अपनी लड़कियों को अच्छे–अच्छे स्कूलों में पढ़ाते–लिखाते हैं, जिससे वह समाज में फैली बुराई, विसंगतियों का सामना कर सके और जागरुक होकर एक समतामूलक समाज के निर्माण में अपना योगदान दे सके, लेकिन वेणु जैसी युवा छात्रा कुछ बोलने का प्रयास करती है तो उसे चुप करा दिया जाता है और वही पुरातन व्यवस्था की चारदीवारी में कैद कर दिया जाता है। वर्तमान परिदृश्य को देखकर लगता है कि लेखक पाठकों के सामने ये चुनौती भरा सवाल प्रस्तुत किया है कि क्या समाज में फैली विसंगतियों और बुराइयों का सामना करने का अधिकार महिलाओं को नहीं है?वहीं जातिवादी समस्या जो आज राष्ट्रीय मुद्दा बनकर फैली हुई है, चाहे वह सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, आर्थिक किसी भी क्षेत्र में क्यों न हो; यह केवल अनुपयोगी ही नहीं, समाज के विघटन का कारण भी बनती जा रही है। यह हमारी राष्ट्रीय सुरक्षा के समक्ष गंभीर चुनौती का प्रश्न है। लेखक ने पाठकों को यह बताने की कोशिश की है कि आरक्षण जैसी व्यवस्था जाति भेद, वर्ग भेद में टिके रहने की नहीं है, बल्कि इसी उपयोगिता से समतामूलक समाज की स्थापना करके बहुमुखी विकास में सहयोग देना है।

वहीं 'आखिरी निर्णय' कहानी में लेखक ने सामाजिक परिवेश में बेटी का विवाह और फिर दाम्पत्य जीवन की समस्या का चित्रण प्रस्तुत किया है। विवाह इंसान के जीवन में घटित होनेवाली बहुत ही महत्वपूर्ण घटना होती है, अगर वर–वधू सुयोग्य मिल जाए तो 'परिवार' जैसी संस्था प्रगति के पथ पर चल पाती है, नहीं तो उसे कई समस्याओं का सामना करना पड़ता है। आज भी समाज में दहेज प्रथा अभिशाप बनकर फैली हुई है। अगर बेटी किसी गरीब बाप की होती है तो उस लड़की को आज कई समस्याओं से गुजरना पड़ता है। कभी अनमेल विवाह, तो कभी लड़की को दाम्पत्य जीवन में प्रताड़नाएँ सहनी पड़ती हैं। कहानी में सीता और मुनीन्द्र का अनमेल विवाह होता है। सीता अपने दाम्पत्य जीवन में कई समस्याओं को झेलती है। वह कहती भी है–'अत्याचारी जुल्मी को सजा न मिले तो अत्याचार बढ़ता ही जाएगा।' इसलिए वह अपने पति से किसी प्रकार का समझौता न करके अपने पैरों पर खड़े होन का संकल्प लेती है।

'रंग में भंग' कहानी में लेखक ने युवावस्था की समस्या को दिखाया है कि आज युवा लड़का पहले अपने पैरों पर खड़ा होना चाहता है, फिर विवाह करके अपना जीवन निर्वाह करना चाहता है। लेकिन माँ–बाप अपने बच्चों का विवाह अपनी मर्जी से करवाना चाहते हैं। कुछ तो दहेज के चक्कर में और कुछ सामाजिक परिवेश को देखकर। कहानी में एक पात्र कहती है–'विकास की शादी कर दो, उसमें जो दहेज मिलेगा, उससे शैलजा की बाली भ बन जाएगी और उसका विवाह भी हो जाएगा।'

समाज के बदलते हुए परिवेश का प्रभाव या दुष्प्रभाव कहिए, यह नजर आता है कि माँ–बाप अगर बिना मर्जी से विवाह कराते हैं तो वर या वधु रंग में भंग करते हुए नजर आते हैं; क्योंकि वह किसी बँधी बँधायी परिपाटी में न फँसकर बल्कि बदलती हुई सोच द्वारा अपनी मान्यताओं के आलोक में समाज को एक नया स्वरूप प्रदान करते हैं। आधुनिक भारतीय समाज में जहाँ विचारों की स्वतंत्रता की माँग है, तो वहीं अगर माता–पिता अपने बच्चों से परंपरागत दायित्वों का निर्वाह करने को कहते हैं, तो बच्चों द्वारा माता–पिता के निर्णयों का विरोध प्रारंभ हो जाता है।

दूसरी स्थिति समाज की यह है कि 'संकल्प' कहानी में लेखक ने दिखाया है कि किसी प्रकार गाँव में एक शक्तिशाली वर्ग अपने कमजोर वर्ग की जमीन हड़पने में माहिर होता है। कमजोर वर्ग अपनी जमीन को पाने के लिए निरंतर संघर्ष करता रहता है। भारतीय समाज की ऐसी चुनौतीपूर्ण समस्या आज भी गाँवों और शहरों में देखने को मिलती है।

तत्वतः लेखक की संवेदना अपने परिवेश को ग्रहण करती है, इसलिए लेखक खुद कहता है–'मैंने अपने जीवन में जो दुःख देखे और झेले, उसे समाज के बहुसंख्यक मेहनतकश जनता को झेलते देखता हूँ तो हृदय द्रवित हो जाता है।'

इसलिए 'युद्ध' कहानी संग्रह में लेखक ने अपनी कहानियों के पात्रों के माध्यम से समाज में परिवर्तन कर एक वर्ग विहीन, शोषणमुक्त समाज की परिकल्पना को दिखाया है, जिससे पाठकों को कहानी सिर्फ मनोरंजन ही नहीं दे, बल्कि उन्हें अपने समाज के प्रति जागरुक बना सके और अपने परिवर्तनों का रुख बेहतर भविष्य की ओर कर सके।

समीक्षा :

तू मुझमें धड़कता है:

मंजुला उपाध्याय

डॉ मीरा श्रीवास्तव
राजेन्द्रनगर, आरा (बिहार)
9709739548

यह सुखद संयोग ही है कि लगभग एक वर्ष पूर्व ही मंजुला उपाध्यायजी का प्रथम काव्य संकलन मेरे हाथों में था। इस अनुरोध के साथ में उक्त पुस्तक की समीक्षा करूँ, मैंने किया भी। और दो–तीन महीने पूर्व घटना में हुई आकस्मिक भेंट में उन्होंने मेरे हाथों में 'तू मुझमें धड़कता है' की प्रति थमाते हुए बड़ी ही आत्मीयता से कहा–दी। मेरी इस पुस्तक की समीक्षा भी आपको ही करनी है। मैंने प्रतिवाद दर्ज कराया–मुझे ग़ज़लों की कोई खास समझ नहीं मंजुला। जिसे तपाक से खारिज करते हुए मंजुला जी ने अपना फैसला दो टुक शब्दों में सुना दिया। 'मेरी समझ ग़ज़लों की समीक्षा के लिए भावों की जरूरत है जानकारी की नहीं।' यह तो आपको ही करना है। बस उनके स्नेहानुरोध को टालना मेरे लिए असंभव सा था। नतीजतन कोशिश में लग गई मैं। मंजुला जी की ग़ज़लों की बाबत कुछ कहूँ, उसके पहले मैं दिनेश शुक्ल की कुछ पंक्तियाँ उद्धृत करना चाहूँगी–ग़ज़ल अरबी भाषा का शब्द है और इसका शाब्दिक अर्थ है–माशुका से बातचीत। जाहिर है कि बातचीत के लिए दो व्यक्ति का होना जरूरी है; किन्तु सैकड़ों वर्षों से ग़ज़ल का एक ही रूप चला आ रहा है और वह है आशिक–प्रेमी की ओर से उसके अपने मनोभावों की अभिव्यक्ति। किन्तु मात्र प्रेम और शृंगार की अभिव्यक्ति ही ग़ज़ल का अभिप्राय नहीं। प्रकृति वर्णन, इतिहास, कर्मवीरता, नीति, देशप्रेम, आध्यात्मिकता, दर्शन, जीवन का हर पहलू अपनी समग्रता में ग़ज़लों के विषय रहे हैं। मंजुला जी के इस ग़ज़ल संग्रह में कुछ जमा तैरासी ग़ज़लें संकलित हैं और ग़ज़लकारा के रूप में मंजुला जी निश्चित रूप से बधाई की पात्रता रखती हैं कि इन सभी विषयों की अभिव्यक्ति मंजुलाजी की ग़ज़लों में व्यापकता के साथ हुई है।

संकलन की पहली ग़ज़ल–'तेरी सांसों की खुशबू से मेरा मन महकता है' में महबूब के प्रेम का जादू सर पर चढ़कर बोलता नजर आता है। साँसों की खुशबू इश्क की बदौलत और दिल का धड़कना भी इश्क की नियामत! लेकिन इस जादू में जज्ब होकर सब खाली हाथ हो जाते हैं। मंजुला की पहली ही ग़ज़ल समर्पण के इसी जादू में डूबी हर हर्फ मधुमय खुशबू बिखेर रही है।

महबूब के लिए ऐसी पाक दुआ और शिद्दत के साथ जिंदगी की हर खुशी को उसके नाम करने की चाहत मंजुला की इस ग़ज़ल की अंतरधारा है, जहाँ वह कहती हैं–'आप ही आगाज और अंजाम हैं/दिल की धड़कन जिंदगानी आप हैं।'

परब्रह्म को अपने महबूब के रूप में प्रतिष्ठित कर सांसारिक प्रेम को जोड़ने का प्रचलन शेरो–शायरी के साथ आरंभ से ही जुड़ा हुआ है मारफत के नाम से। यही मारफत ग़ज़ल की आत्मा बनकर उसे जीवंतता और संप्रेषणीयता प्रदान करता है।' अपनी खुशबू मुझमें भर दे' शीर्षक ग़ज़ल में यह समन्वय बहुत गहरे और गंभीर अंदाज में अभिव्यक्त हुआ है।

मंजुला जी ग़ज़लों से सहज अभिव्यक्ति का तत्त्व तथा उनके कथ्य को असाधारण प्रभावोत्पादकता प्रदान करती है–'एक प्यार की चाहत में सौ उम्र गुजर जाती/ क्यों लोग ये कहते हैं, दो दिन की जवानी है।'

आज जब बाजारीकरण ने जीवन और जगत के हर हिस्से को अपने गिरफ्त में ले लिया है तो बेशक मानवीय संबंध भी इस प्रभाव से अछूते नहीं रह गये हैं। जटिलताओं ने मनुष्य को लगभग मशीन में तब्दील कर उसकी संवेदनाओं पर घातक प्रभाव डाला है। यह फिक्र मंजुला की इस शिकायत में सुनाई देती है–'आपकी नजरों में जो व्यापार है/मोहतरमा यह तो किसी का प्यार है। आपने जिस इल्म को सौदा कहा/गुरबतों की जिंदगी का सार है।' प्यार की कीमत वही आँक सकता है, जिसमें अनुभूति और संवेदनाशीलता शेष है, तभी तो कबीर ने कहा–'प्रेम न बाड़ी उपजे, प्रेम न हाट बिकाय' लेकिन निष्ठुर को जबतक प्रेम की कीमत का अंदाजा हो पाता है, तबतक तो तीर कमान से बाहर जा चुकी होती है और हालात ये हैं कि 'बेवफा कहकर जिसे ठुकरा दिया/क्यों उसी के इश्क में बीमार है।' इश्क की नियति और त्रासदी यही है।

ढहते संबंधों की खंडहर पर जब जिंदगी अपने ही कंधों पर रखी लाश की मानिंद लगने लगे, ठीक उसी वक्त किसी अपने का आ जाना जिंदगी की एकबारगी कितना खुशनुमा सा बना देता है–'इस तरह सूखे थे मौसम चार सू हम क्या कहें/आप क्या आये इधर मौसम रसीले हो गये।' अपने प्रिय से बातचीत का अंदाज जब इतना सादा हो तो इस सादगी पर कौन न मर मिटे?

प्रिय के प्रति ऐकान्तिक भी समर्पण के मुखर क्षणों में प्रतिदान की आकांक्षा करने से अपने को रोक नहीं पाता, उसके प्रेमाकुल भाव चेतावनी की शक्ल अख्तियार कर लेते हैं, लेकिन मंजुला बड़ी नफासत से उनकी बेरुखी की दुश्वारियों में भी खुद को शामिल करना नहीं भूलतीं.... 'दूरियाँ बढ़ गयीं तो झुलसते रहे/तुम उधर धूप में हम इधर धूप में।' और एक अंदाज यह भी 'हम मुहब्बत के नए अंजाम से वाकिफ हुए/अपने दामन पर जमाने की बगावत क्या लिखें!'

सच्चाई और शिद्दत से प्यार करनेवालों के लिए बेवफाई एक खता हो सकती है, लेकिन बेवफा के लिए तो यह उसका हुनर है और इसके इल्जाम से खुद को महफूज रखने के लिए वह तमाम पुख्ते इंजजामात कर बैठता है–'खुद को दामन बचाना पड़ा, तो मंजुला की खता ढूंढ लेगा।'

प्रिय की चाहत अशेष है, एक क्षण का साथ भी जन्म–जन्मांतर की तृप्ति दे जाता है। 'बस दो दिन ही रह पाया था/घर के चारों धाम कर गया।' तभी तो कहते हैं–'शीशाए दिल में छुपा है ऐ सितमगर तेरा प्यार, जब जरा गर्दन झुकी देख ली तस्वीरें यार–प्रेम में विछोह की संभावना ही नहीं है; क्योंकि प्रेम में दैवत्व के भाव का अस्तित्व है, एकात्मकता ही उद्दात्त प्रेम की विशेषता है।

प्रेम का ऐकान्तिक समर्पण आँखों पर मोह की पट्टी बाँध देता है और इस मोह के आधिक्य में हम न तो प्रिय की कोई कमी देख पाते हैं, न ही उसका कोई कसूर हमें दर्द दे पाता है, आसक्त मन की मोहान्धता का क्या खूब बयाँ किया गया है इन शब्दों में–'कैसा नादान है दिल लाख दगा खाता है/प्यार करने से मगर बाज नहीं आता है।' ऐसा नहीं कि मंजुला जी की रचनाओं में रची पगी प्रेमिका के ही चित्र हैं, जो आठों पहर प्रेम और प्रिय की दुनिया में ही खोई रहती हो, बल्कि यह स्त्री एक ऐसे चरित्र के रूप में भी उभरती दिखती है, जो उद्घोष करती है–धरती अंबर को मैं नाप आई, आंकड़ों में 'अधेली' नहीं हूँ। इस स्त्री को अपनी कुव्वत पर भरोसा ही नहीं गुरुर भी है, खुद को कमतरी में आंकनेवालों को वह निहायत संजीदगी से चुनौती देती खड़ी हो जाती है; क्योंकि उसने अपनी कल्पना को अपने अकेलेपन का साथी बना लिया है–'कल्पना है मेरी अब सहेली/मैं सफर में अकेली नहीं हूँ।' या फिर 'मेरी औकात कभी कद से न मापा कीजे, मिर्च छोटी ही सही, होंठ लहर जाता है।' नारी सशक्तिकरण की अनुगूंज कवयित्री की कई रचनाओं में सुनाई देती है। सामाजिक सरोकारों का भी इल्म कवयित्री को बाखूबी है, वह अकेले ही सही, खुदगर्जी, विश्वासघात और सांसारिक लालसाओं के खिलाफ ईमानदारी और जज्बातों की जायज लड़ाई लड़ने में पूरी तरह सक्षम है। 'मुझको विचलित कर देना आसान नहीं/खुद्दारी है सीने में अभिमान नहीं। संवेदना और भावों की उच्चता ध्यातव्य है कि स्त्री अपने खुद्दार होने की स्वीकृति तो देती है, पर अभिमानी होने की नहीं, तभी तो वह कह उठती है–दिल क्या हम तो जान लुटाने

वाले हैं/बेशक हम भावुक हैं पर नादान नहीं।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में राजनीति वर्चस्व की लड़ाई बनकर रह गयी है और शिखर पर स्थापित होन की कुत्सित लालसा में न केवल आदमी को बल्कि प्रकृति और पर्यावरण को भी अपना शिकार बना लिया है। लोकतंत्र का जैसा वीभत्स परिदृश्य आज हमें देखने को मिल रहा है, वह कल्पनातीत है। अपनी सुरक्षा, अपने परिवेश को सुरक्षा का दायित्व हमने दिया, वही भक्षक की भूमिका में अवतरित हो हमें भी आत्महंता के चरित्र में उतरने के लिए आज विवश कर रहे हैं। उद्योगपतियों और राजनेताओं के मिलेजुले षड्यंत्र ने प्राकृतिक उपादानों के निरंतर विनाश के द्वारा पर्यावरण को अपूरणीय क्षति तो पहुँचाई ही, प्रकति को असंतुलित कर मानवीय अस्तित्व को संकट में डाल दिया है।–''कुर्सी के इन मतवालों से क्या उम्मीद करें/जान बुझकर क्यों अपनी मिट्टी को पलीद करें/.... .शहरों में घुसपैठ हुई जंगल घर तक आया/ऐसे सुर्ख सवालों को कुछ और जदीद करें।''

सियासत के दलदल में जो धँसा, वह अनायास ही अंतहीन गहराई में धँसता ही जाता है। गर्हित राजनीति व्यवस्था और सत्ता के आपस में गले मिलने का दुष्परिणाम है, जिसने जीवन और जगत का रूप विकृत कर दिया–''गिरगिट को भी मात न कर दे आदत ये उनकी/जोड़ तोड़ गठजोड़ की रेलम पेल दिखाती है'/ और विडम्बना कि–'इक दूजे पर लाख धरें इल्जाम मगर मंजुल/खादी से अक्सर खाकी की मेल दिखाती है।''

जीवन की विषम परिस्थितियों ने आज आदमी की पहचान को भी खतरे में डाल दिया है, लेकिन ग़ज़लकार को इसकी फिक्र है; क्योंकि उसकी संवेदनशीलता आम आदमी से गहन और मुखर है, वह फिक्रमंद है; क्योंकि ये लड़ाई आदमी बनाम आदमी की है और इस जंग में हर दाँव, हर पेंच जायज है, दूसरे की कमियाँ गिनाने की होड़ में आदमी खुद अपनी कमियों को नजरअंदाज करने के हुनर में माहिर हुआ जा रहा है–'मैं भी हूँ उस हम्माम में सोचा कहाँ कभी!'

मंजुला ने बड़ी बारीकी से इन ग़ज़लों में व्यजना का इस्तेमाल किया है–''आप ही तो काम के हैं आदमी, हम तो मानो व्यर्थ हैं, बेकार हैं।.... मेरी ग़ज़लों में कहाँ वो बात है, आपके अशआर पायेदार है।'' कभी कभार अपनी लाचारी और कमतरी पर तंज कसना भी एक सबब सा बन जाता है, खासकर तब जब यह अहसास हो कि लाचारी और कमतरी आरोपित है, जबरन लादी गयी है।

मंजुला की कुछ ग़ज़लों में उनकी एक मन:स्थिति विशेषकर चित्रित देखने को मिलते हैं, मानसिक उहापोह में डूबी उन्हें अपने चारों ओर घटाटोप अंधकार, गंतव्यहीन टेढ़े–मेढ़े रास्ते, अंतहीन जागी रातें, खानाबदोश जिंदगी, आत्मविश्वास से खाली हो जाना, अपने प्रति ही अविश्वास से घिर इस अँधेरे सुरंग से बाहर आने का कोई रास्ता उन्हें सूझता नहीं, मनुष्य के जीवन में ऐसा ठहराव अस्वाभाविक है–''मैं क्या खबर रखूँगी किसी और शख्स की/रहती कभी है जब मुझे अपनी खबर नहीं।''

अपनी कल्पना को अभिव्यक्ति का कैसा रूप कवि ने दिया है, इस आधार पर ही कवि की पहचान विशिष्टता को प्राप्त करती है, काव्य और विशेषकर ग़ज़ल विधा में अभिधात्मक अभिव्यक्ति की गुंजाइश नहीं के बराबर है। मुख्यत: कथ्य और कथन का विषय प्रेम और प्रेमी–प्रेमिका हैं, अत: व्यंजनात्मक, लक्षणात्मक अभिव्यक्तियाँ ही ग़ज़ल के मिजाज के लिए सही हैं। मंजुला की खास पहचान इस बिंदु पर है।

दमनकारी शक्तियाँ हमारे इर्द–गिर्द दमघोंट माहौल बनाने में पूरी तरह कामयाब हो चुकी हैं, बावजूद इसके मंजुला को यकीन कि अपने मकसद में ये कभी कामयाब नहीं हो पाएँगी। ये लाख अपने पैरों के नीचे हमें कुचलने की कोशिश करते रहें, चुनौतियों का सामना करनेवालों का कारवाँ थमेगा, क्योंकि–''मुझे न तुफाँ न आँधी का डर, अभी बुलंदी पर हौसला है।''

ऐसे माहौल में इंसानियत पर से ही यकीन उठने लगा तो, कुछ लोग मुट्ठी भर ही सही आज भी इस दुनिया में हैं कि उन्हें देख आदमियत पर फिर से भरोसा बहाल होने लगता है और शायद यही वजय है दुनिया के बचे रहने की–'कुछ ऐसे भी लोग हैं जिनको याद करो मन खिल जाता है।'

रहबर के प्यार में डूबी मंजुला की ग़ज़लों में रूमानियत, खुमारी, समर्पण, शिकायत, मनुहार की प्रतिध्वनि ही नहीं सुनाई देती, बल्कि सामाजिक सरोकारों से जुड़े तमाम मसलों पर भी उनकी नजर पड़ती है। आदमी की चालाकी और उसकी खुदगर्जी ने उसे खूँखार जानवर की तरह धूर्त, शातिर बना दिया है। उसकी असलियत को पहचानना नामुमकिन सा हो गया है, उसने अपने असली चेहरे पर जो मुखौटा चढ़ा रखा है, उसकी वजह से उसकी नीयत को भाँपना मुश्किल है। आदमी की खाल ओढ़े ऐसे भेड़ियों से मंजुला हमें खबरदार करती कहती हैं–'मंजुल अपनी साख बचाना, जालिम वार पे वार करेगा।'

मंजुला की ग़ज़लों के भीतर जो खुशबू अंतर्निहित है, वह मूलत: इश्क का दर्द है। जाहिर सी बात है कि मंजुला ने अपने महबूब के इश्क की गहराइयों में डूबते हुए अपनी तमाम कामयाबी का श्रेय उसे ही दिया है, इन शब्दों में–'आपसे जिंदा लेखनी मेरी, ग़ज़लों का दीवान आपसे'–इन पंक्तियों में एकान्तिक समर्पण का चरम अपनी आत्यंतिकता में देखने को मिलता है, जहाँ 'निजत्व' का अवसान हो जाता है। प्रेम की पराकाष्ठा यही तो है।''

और अंतत: किसी ऐसे अमन के फरिश्ते की कल्पना भी मंजुला की ग़ज़लों में है, जो इस दुनिया को तबाही के मंजर से निकालकर मीठे सपनों की पुरसुकून दुनिया में ले जाने की उम्मीद जगाता है, जहाँ नफरत की बातों से जग को अनजाना बना देने की सलाहियत है–'यारों सब महसूस करेंगे,एक अनोखा परिवर्तन/नफरत की बातों से जग को अंजाना कर जाएगा।'

'धूप से ठंढी छाँव में आकर देख लिया/चौराहे पर दीप जलाकर देख लिया।' कि ग़ज़लों में प्रयुक्त सारे बिम्ब मंजुला के आस–पास फैली तमाम अफरा–तफरी के बीच चैन और आश्वस्ति का भाव जगाती है। स्थिति ऐसी हो गयी है कि आम से खास सब के सब एक बेलौस बेपरवाही से भरे पड़े हैं। न तो हालत के लिए प्रतिकार का स्वर इनके भीतर है और न ही संघर्ष का माद्दा और न ही हाल सुधारने की इच्छा। तटस्थता और हर हालत में अपने को ढाल लेने की प्रवृत्ति ने आदमी की ऐसी हालत कर दी है, मंजुला के शब्दो में–''संसद से सड़कों तक सोए लोग मिले/बस्ती बस्ती अलख जगाकर देख लिया।''

किसी भी भाषा का काव्य हो, उसके मूल में परिवर्तन सहज रूप से लक्षित है और इसमें आपत्ति की जगह नहीं; क्योंकि परिवर्तन प्रकृति का स्वाभाविक क्रम है, कालक्रम में काव्य ने अपनी पद्यात्मकता को छोड़ गत्यात्मकता को ग्रहण किया। हिन्दी ग़ज़लकारों में भी यही देखने को मिलता है। मंजुला अपनी ग़ज़लों में अपनी अभिव्यक्ति सहज रूप में वार्तालाप के स्तर पर करती दिखाई देती हैं। भले ही वह गुफ्तगू अपने महबूब से कर रही हों या किसी दूसरे सजीव या निर्जीव से और यही सादगी उनकी शायरी के साथ पाठकों को बड़ी आसानी से जोड़ता है।

मंजुला इस बात से पूरी तरह से इत्तेफाक रखती हैं कि उनकी सृजनात्मक विधा (मेरा मतलब उनकी ग़ज़लों से है) में जुबान की सरगोशी कोई मायने नहीं रखती, भला वो रहबर ही कया जो दिल–नजर की जुबान को पढ़ न सके। यही विश्वास वजह है मंजुला की शायरी में बसी फुसफुसाहट की, जो हमारे दिल पर तो असर करने में कोइ कोताही नहीं बरतती, उनके दर्द का अहसास बखूबी हमें कराने की काबिलियत रखते हुए बेचैन करती है, लेकिन मुखरता की हद पार करने की अनुभूति नहीं होती।

आखिर में कुछ शब्द ... मंजुला की आत्मीयता के वशीभूत मैंने उनकी ग़ज़लों पर कुछ कहने की हिमाकत तो कर ली, अलबत्ता मुझे उनकी धड़कनों को सुनने का अधिकार उन्होंने मुझे दिया, मैं शुक्रगुजार हूँ मंजुला आपकी।

अंतर्मन से आपकी बहुआयामी सृजन के लिए आपको बधाई एवं हार्दिक शुभकामनाएँ देती हुई, अपनी भावनाओं को अभी यहाँ विराम देती हूँ।

कहानी

प्रतीक्षा

डॉ राजेन्द्र सिन्हा
श्रीकृष्णनगर, सीतामढ़ी
मो० 9801038841

स्कूल हॉस्टल के रसोईघर की वह खिड़की मुख्य सड़क की ओर खुलती है। नकुल उसी खिड़की के पीछे बैठकर सड़क पर आते–जाते लोगों को देखता रहता है। वह उस रसोईघर में रसोईया के सहायक के रूप में नौकरी करता है। फुर्सत की घड़ी में वह अपनी आँखों में किसी की अंतहीन प्रतीक्षा लिए बैठा रहता है।

नकुल तीस वर्ष का एक स्वस्थ सुदर्शन युवक है। वह अपने काम के प्रति काफी निष्ठावान और प्राचार्य के प्रति वफादार है। वह अपने निर्धारित कार्य के निष्पादन मात्र के लिए बच्चों को नहीं खिलाता, बल्कि उन नन्हों के प्रति उसके मन में अथाह प्रेम हिलोर लेते रहता है। शाम में बच्चे जब मैदान में खेलने जाते हैं, तो मैदान के किसी कोने में बैठा नकुल उनकी निगरानी करता रहता है। कहीं कोई बच्चा सड़क पर न चला जाए, किसी को चोट न लगे, कोई झगड़ा न करे।

त्रासदी यह है कि नकुल गूँगा और बहरा है। अभिव्यक्ति के साधन के रूप में वह हाथ, पैर, मुँह, आँख, सर से इशारे का उपयोग करता है। ऐसी अभिव्यक्ति के समय वह मुँह से पी–पी–पीं, गों–गों–गों की आवाज भी निकालता रहता है। लोग भी इशारे में ही उसे कुछ कहते हैं। हाँ, नकुल की बुद्धि कुशाग्र है।

स्कूल के सभी कर्मचारी नकुल के प्रति सदैव सचेत रहते हैं। स्कूल परिसर के बाहर उसे कभी अकेले नहीं जाने देते। अकेला नकुल कहीं भटक गया तो क्या होगा?वह स्कूल से कैसे लौटेगा?किसी को अपना पता कैसे बताएगा?उसके इशारों को अपरिचित लोग समझेंगे भी या नहीं?समझ भी गये तो आज की आपा–धापी वाली जिंदगी में किसे फुर्सत है कि नकुल को हॉस्टल पहुँचा देगा। कर्मचारियों का यह सुरक्षात्मक प्रतिबंध नकुल के भीतर धीरे–धीरे एक आक्रोश को अंकुरित करने लगा।

स्कूल कर्मचारियों की आशंका अकारण नहीं थी। एक बार नकुल अपने सहकर्मियों के साथ दुर्गापूजा का मेला देखने चला गया। मेले में भीड़ थी, गहमागहमी थी। नकुल साथियों से बिछुड़ गया। लेकिन उसे चिंता नहीं थी। वह आत्मविश्वास से लबालग भरा था। नकुल अकेले मेला घूमकर चला जाएगा। उसने बैलून और बाँसुरी खरीदी। इस पंडाल से उस पंडाल में घूम–घूम कर मूर्तियों का दर्शन करता रहा। मेला देखता रहा। कठिनाई उसे सड़क पर हो रही थी। पीछे से कोई गाड़ीवाला या मोटर साइकिल वाला उसे बीच सड़क छोड़कर चलने का संकेत जोर–जोर से हॉर्न बजाकर देता। किन्तु एक हाथ में बैलून और दूसरे हाथ से बाँसुरी पकड़कर उसे फूँकता जा रहा नकुल हॉर्न सुने तब तो कुछ करे। उधर गाड़ीवालों को पता नहीं कि आगे–आगे चल रहा युवक बहरा है। उसकी उम्र को देखकर वाहनचालक अनुमान लगा लेते कि यह कोई बदमाश युवक है और जान–बुझकर रास्ता रोक रहा है। फिर सामने से आनेवाले कोई व्यक्ति पीछे अंगुली दिखाते हुए नकुल को कहता 'बहरे हो क्या जी! हॉर्न सुनाई नहीं देता?देह पर गाड़ी चढ़ जाएगी, तो बाँसुरी बजाते रह जाओगे।' बोलनेवाले की बात तो नकुल सुनता नहीं, पर इशारा देखकर जब पीछे मुड़ता तो अपने पीछे गाड़ी को देखकर वह चौंककर किनारे आ जाता। फिर जीभ निकालकर दाँत काटते हुए वह अपनी गलती का इजहार करता। दो–तीन बार ऐसा होने पर वह बीच सड़क छोड़कर किनारे से चलने लगा।

रात हो गई। नकुल को लगा कि अब हॉस्टल लौटना चाहिए। लेकिन रास्ता?कौन–सी सड़क हॉस्टल जाएगी?उसने तो कई चौराहों को पार किया है। किस चौराहे पर वह अपना रास्ता छोड़ आया?लोगों से पूछने लगा भाषा के रूप में उसके पास शब्द तो नहीं, इशारे हैं। वह इशारों में पूछने लगा–छोटे–छोटे बच्चे, धरती से ढाई, तीन फीट हाथ ऊपर का बताता। 'पढ़ते हैं' के लिए दोनों हाथों से किताब को उलटने को उलटने का इशारा करता। लिखते हैं के बदले हाथ और अंगुली को घुमाता। स्कूल बस के बदले दोनों से स्टीयरिंग घूमाने का इशारा करता। लोग समझ जाते कि यह गूँगा किसी स्कूल की बात करता है; किन्तु वे कैसे समझें कि इसका स्कूल कहाँ है। शहर में तो कदम–कदम पर स्कूल है। रात के दस बज गये। नकुल भटकता रहा। सड़क पर लोगों की संख्या कम होने लगी। उसे मंदिर दिखाई दिया। सड़क के किनारे ही मंदिर। वह मंदिर की ओर बढ़ा।

जब ग्यारह बजे तक नकुल हॉस्टल नहीं लौटा तो कर्मचारियों की निराशा और प्राचार्य की चिंता काफी बढ़ गई। किसी ने खाना नहीं खाया। बच्चों ने भी नहीं। प्राचार्य ने मोटर साइकिल स्टार्ट की। खोजने लगे नकुल को। इस पंडाल से उस पंडाल तक। कहीं पता नहीं नकुल का–कहाँ गया नकुल?कहीं किसी वाहन से ठोकर खाकर दुर्घटनाग्रस्त तो नहीं हुआ?किसी ने उसे अस्पताल तो नहीं पहुँचा दिया। अस्पताल का फोन नंबर है। मोटर साइकिल रोककर पूछा। उत्तर नकारात्मक मिला। सकुन मिला। चलो, उसे कुछ हुआ नहीं है। कुछ हो जाता तो उसके माँ–बाप को क्या उत्तर देते प्राचार्य?वे सामने से इक्का–दुक्का आनेवाले लोगों से नकुल का हुलिया बताकर उसके बारे में पूछने लगे। एक फल बिक्रेता दुकान बंद कर रहा था। पूछने पर उसने बताया कि हाफ पैंट और गंजी पहने एक युवक किसी स्कूल का पता पूछ रहा था। उसके हाथ में एक बाँसुरी और दूसरे हाथ में बैलून थी। व काफी रो रहा था। वह उत्तर तरफ गया है। प्राचार्य की छाती फटने लगी। सड़क पर उत्तर की ओर बढ़े। कहीं कोई नहीं। बारह बज गये। अब लौट जाना चाहिए। सड़क पर सन्नाटा भर गया। इस सन्नाटे में कहाँ गुम हो गया नकुल?वे लौटने लगे। मंदिर के सामने हाथ जोड़कर कोई खड़ा है। इस समय कौन पूजा करेगा?मोटरसाइकिल रोकी। धन्य हो ईश्वर! बतहा मिल गया। हाँ, नकुल ही है। भगवान की मूर्ति के सामने नकुल आँखें बंद किये, हाथ जोड़े खड़ा था। प्राचार्य ने उसके कंधे पर हाथ से थपकी दी। नकुल चौंका, आँखें खोलीं। प्राचार्य ने देखा कि नकुल की दोनों आँखों से अविरल धाराएँ बह रही थीं। नकुल पीं–पीं–पीं–पीं करने लगा। उसे लेकर प्राचार्य हॉस्टल पहुँचे।

नकुल के पहुँचते ही हॉस्टल चहक उठा। सभी खुशी से झूम उठे; किन्तु नकुल का क्रोध सातवें आसमान पर था। । पीं–पीं, गों–गों की आवाज से हॉस्टल ही नहीं, मुहल्ला जाग उठा। क्यों तुमलोग मुझे छोड़कर चले आये?तुमने धोखा क्यों दिया?तुमने छोड़ दिया, भगवान ने नहीं। नकुल ने आसमान की ओर और प्राचार्य की ओर इशारा कर हाथ जोड़कर प्रणाम किया। फिर उसने वहाँ खड़े बच्चों में से सबसे छोटे को बैलून और उससे बड़े को बाँसुरी दे दी। प्राचार्य के मनाने पर वह शांत हुआ। फिर उसे बताया गया कि उसके गुम हो जाने के दु:ख में बच्चों ने खाना नहीं खाया है। इशारा समझते ही नकुल की पीड़ा अथाह हो गयी। बच्चों ने भी खाना नहीं खाया है?उसने जीभ निकालकर दाँत से काटी। फिर सभी बच्चे और कर्मचारी खाना खाने बैठे। नकुल बच्चों के सोने के कमरों में घूम–घूमकर देखने लगा, कहीं कोई बच्चा भूखे तो नहीं सो गया।

दूसरे दिन नकुल उसी खिड़की पर बैठा सड़क पर आते–जाते लोगों को देख रहा था। उसने देखा कि एक बूढ़ी औरत लाठी का अगला सिरा पकड़े आगे–आगे और उसकी लाठी का पिछला सिरा पकड़े एक बूढ़ा

पीछे–पीछे चल रहा है। उसे लगा कि इस दम्पति में पति अंधा है। वह पत्नी की आँखों के सहारे जी रहा है। गों–गों करता नकुल बाहर निकला। उसने प्राचार्य को सड़क पर जा रहे दंपति की ओर इशारा कर देखने को कहा। प्राचार्य ने देखा। इस विद्यालय में नकुल के अंतर्मन की बात सिर्फ प्राचार्य ही समझते हैं। उन्होंने इशारे से नकुल को कहा तुम शादी कर लो। तुम भी पत्नी के साथ बाहर जाना। वह तुम्हें मेला भी ले जाएगी। तुम्हें भटकने नहीं देगी। खाना बनाकर घर में खिलाएगी। नकुल लजा गया। वह लौटकर फिर उसी खिड़की के पास बैठ गया।किन्तु इस संवाद ने उसके भीतर एक हलचल मचा दी।

नकुल के भीतर पुरबइया के झोंके में फूलों से लदी पलाश की डालियाँ झूम उठीं। उसकी भी शादी हो सकती है क्या?क्यों नहीं?जब उस अंधे की शादी हो सकती है, तो नकुल की क्यों नहीं?सड़क पर जा रहे बूढ़ा–बूढ़ी पति–पत्नी हैं। नकुल के सभी सहकर्मियों की पत्नियाँ हैं। पति–पत्नी दुख–सुख बाँटकर जीते हैं। बाँटने पर दु:ख आधा और सुख दुगुना हो जाता है। नकुल का मित्र शैलेन्द्र अपना पूरा वेतन पत्नी को दे देता है। घर वही चलाती है। दो छोटे–छोटे बच्चे हैं उसके। नकुल उसके बच्चों को बहुत प्यार करता है। बच्चे नकुल के कंधे पर चढ़ जाते हैं। शादी हो जाएगी तो नकुल के अपने बच्चे उसके कंधों पर चढ़ेंगे। उसकी पत्नी उसके साथ चलेगी। उसके पीछे आ रही कार का हॉर्न सुनकर पत्नी नकुल को सचेत कर देगी। वह दुख बाँट लेगी। वह सुख दुगुना कर देगी। वह पत्नी के साथ मेला जाएगा। पत्नी के लिए लहठी खरीदेगा। पायल खरीदेगा। साड़ी–ब्लाउज और लाल लिपिस्टिक खरीदेगा। वेतन के पैसे भैया को नहीं देगा। लेकिन भैया को पैसे नहीं देगा, तो घर कैसे बनेगा?भैया घर बना रहा है। एक कमरा नकुल के लिए भी बनेगा। उस कमरे में वह पत्नी के साथ रहेगा। ठीक है, अभी तो वह भैया को ही पैसा देगा। शादी हो जाएगी, तो पैसे पत्नी को देगा। पत्नी खुश हो जाएगी। वह नकुल को स्वर देगी। वह श्रवण देगी। वह पत्नी के मुँह से बोलेगा। उसी की कान से सुनेगा। नकुल निहाल हो जाएगा। सामने के मकान ही छत से कबूतरों का एक झुंड उड़ा। नकुल उनकी सामूहिक उड़ान को देखने लगा। वह खड़ा हुआ। दोनों बाँहें ऊपर उठाकर पीं–पीं करता नाचने लगा।

शनिवार को नकुल के भाई ने प्राचार्य को सूचना दी कि एक गाँव से चार–पाँच आदमी नकुल को देखने आयेंगे। उनमें से एक को अपनी बेटी की शादी करनी है। लड़की वालों को बता दिया गया है कि नकुल गूँगा और बहरा है, किन्तु अपना सारा काम इशारों से कर लेता है।

प्राचार्य ने इसकी सूचना नकुल को दी। नकुल के भीतर सावन का मोर नाच उठा। वह हवा में उड़ने लगा। उसने आसमान की ओर मुँह उठाकर भगवान को धन्यवाद दिया। नकुल के मित्र शैलेन्द्र को प्राचार्य ने सूचना देते हुए हिदायत दी कि नकुल के मेहमानों के स्वागत में किसी प्रकार की कमी नहीं होनी चाहिए। नकुल ने प्राचार्य से अग्रिम वेतन के रूप में कुछ पैसे लिये।

दूसरे दिन सुबह से ही नकुल सक्रिय हो गया। उसने मेहमानों के लिए मिठाई, भूने काजू, किशमिश, भूजिया और ठंडा पेय की व्यवस्था की। उस दिन उसे काम में मन नहीं लग रहा था। काम के समय भी वह बार–बार उस खिड़की पर जाकर मुख्य सड़क से स्कूल की ओर आनेवाली सड़क पर चलनेवाले लोगों को देखता, पता नहीं कब मेहमान आ जाए। अभी तो वह हाफ पैंट और गंजी में काम कर रहा है। मेहमान के आने से पहले आयरन किया हुआ पैंट–शर्ट पह पहन लेगा, कंघी कर लेगा।

सारा काम निपट गया। मेहमान नहीं आए। नकुल की आशा अभी टूटी नहीं है। दिन अभी बहुत बाकी है। वह खिड़की के पास बैठकर मुख्य सड़क से आनेवालों को देखने लगा। किन्तु आज यह क्या हो रहा है, खुली आँखों से ताकते हुए भी वह कहीं खो जाता है और देखते हुए भी वह कुछ देख नहीं पाता। उसके दिमाग में उसकी बारात जा रही है। वह कार में सज–धज कर बैठा है। बाजा–गाजा सब है। पटाखे छूट रहे हैं। कार के आगे शैलेन्द्र और उसके साथी नाच रहे हैं। बारात वधू के घर पहुँचती है। नकुल के गले में लड़की वरमाला डाल रही है। नकुल उसके गले में वरमाला डाल रहा है। फूल बरस रहे हैं।

संध्या चार बजे नकुल की दृष्टि मुख्य सड़क से स्कूल की ओर आते चार देहाती लोगों पर पड़ी। धोती–कुर्ता, गमछा,चप्पल। जरूर ये लोग अगुआ ही हैं। पीं–पीं–पीं करता नकुल शैलेन्द्र के पास दौड़ा। शैलेन्द्र ने भी देखा। हाँ, अगुआ ही लगते हैं। शैलेन्द्र ने प्रांगण में चार कुर्सियाँ और एक टेबल रख दी। नकुल बिदक गया। चार तो अगुआ ही आ रहे हैं। नकुल कहाँ बैठेगा?पीं–पीं करते नकुल ने अपने लिए भी कुर्सी रख ली। पाँच मिनट के अंतर्गत पैंट–शर्ट चप्पल पहनकर नकुल बाल में कंघी करने लगा।

'नकुल कुमार यहीं काम करते हैं?' चारो लोग गेट पर पहुँच गये।

'जी हाँ, आइए, आपलोग। नकुल यहीं है। शैलेन्द्र ने उत्तर दिया।

सभी लोग गेट के भीतर आ गये। गमछी से कुर्सियों को झाड़कर बैठ गये। उन्हें कुर्सी झाड़ते देख नकुल ने जीभ दाँत से दबायी। अरे! कुर्सी उसने क्यों नहीं साफ कर दी थी। क्या कहेगा अगुआ, लड़का भसन्नर है। उनके सामने आया नकुल। प्रणाम किया। खाली कुर्सी पर बैठ गया। आगन्तुकों मेंसे एक ने नकुल से पूछा–'क्या नाम है?'

नकुल मुँह ताकने लगा। उसने शैलेन्द्र से पूछा कि क्या पूछ रहे हैं?शैलेन्द्र ने अगुआ से कहा कि यह लड़का गूँगा और बहरा है। इशारा से पूछिये, तो बताएगा। अगुआ को तो पहले से ही मालूम था। गलती से उसने इशारा से नहीं स्वर में नाम पूछ दिया। उसने इशारा में नकुल को नाम लिखने कहा। नकुल दौड़कर कागज–कलम ले आया। उसने कागज पर लिखा–क ख ग घ ङ। प्रश्न पूछनेवाला अगुआ हँसने लगा। उसके साथ कुछ निरक्षर लोग भी थे। उन्हें उसने कहा कि नाम के बदले क ख ग घ लिख दिया। शैलेन्द्र ने उन्हें समझाया कि उनका प्रश्न ही नकुल नहीं समझ पाया है। वह अपना नाम लिख लेता है। अगुआ ने कहा कि उनलोगों को इससे ज्यादा जरूरी यह जानना है कि इस लड़के को कितना वेतन मिलता है और यह कौन–सा काम करता है। शैलेन्द्र ने सब कुछ बताया। नकुल भी बीच–बीच में अपने काम के बारे में बताने लगा। जब एक ने नकुल से सीधे इशारा कर उसके काम के बारे में पूछा तो वह उसकी बाँह पकड़कर पीं–पीं करते किचेन में ले गया। उसने इशारे से बताया कि वह सब्जी काटता है, चावल धोता है, आटा गूँधता है, झाड़ू देता है, फिर बच्चों की ओर इशारा कर बताया कि इन्हें खाना खिलाता है, नाश्ता भी कराता है।इशारों में उसकी हर अभिव्यक्ति को वे लोग अच्छी तरह समझ रहे थे।

शैलेन्द्र तबतक ठंडा पेय ले आया। गिलास में भर–भरकर सबों को दिया। थोड़ी देर बाद शैलेन्द्र नाश्ता ले आया। मिठाई, भूना काजू, किशमिश, भूजिया, दालमोट। नाश्ते के बाद चाय आयी। सभी लोग खुश थे। किन्तु शादी संबंधी कोई स्वीकृति की बात उन्होंने नहीं बतायी। उनमें से एक ने शैलेन्द्र के पूछने पर कहा कि बातचीत गार्जियन से होगी। वे लोग प्रस्थान कर गये।

थोड़ी देर बाद प्राचार्य लौट आये। नकुल ने इशारों में उन्हें सब कुछ बताया। किन्तु स्वीकृति या अस्वीकृति की बात वह समझ नहीं पाया था। शैलेन्द्र ने प्राचार्य को बताया कि अगुआ ने नकुल को नाम लिखने के लिए कहा तो उसने क ख ग घ लिख दिया। प्राचार्य ने नकुल को इशारे से पूछा कि नाम के बदले क ख ग घ क्यों लिख दिया?नकुल चौंका। क्या कहा?नाम लिखने को कहा था?नाम तो वह लिखने जानता है। उसने शैलेन्द्र से कलम लेकर हाथ पर नाम लिखकर प्राचार्य को दिखाया। प्राचार्य ने इशारे में कहा–मुझे दिखाने से क्या होगा?उनलोगों को क्यों नहीं दिखाया। कहाँ गये वे लोग?चले गये। बहुत दूर नहीं गये होंगे। हाथ में कलम लिए नकुल सड़क की ओर दौड़ा। आज उसकी गति काफी तेज थी। वह बेतहाशा दौड़ रहा था। नकुल पीं–पीं–गों गों कर रहा था। कहाँ गया अगुआ?किधर गया?वह देख ले कि नकुल अपना नाम लिख सकता है। उफ्! शैलेन्द्र ने उसी समय नाम लिखने क्यों नहीं बता दिया। भाग चुके समय को पकड़ने की कोशिश में बीच सड़क पर काफी तेजी से भाग रहा नकुल गिरा। उसे काफी चोट आई। दोनों घुटनों से खून बहने लगा। पीछे से आ रहे प्राचार्य और शैलेन्द्र ने उठाया। अस्पताल ले गये। डॉक्टर के क्लीनिक

में भीड़ थी। रजिस्ट्रेशन कराया। चौदहवाँ नंबर मिल पाया। तेरह मरीजों को देखने के बाद डॉक्टर उसे देखते। शैलेन्द्र को नकुल के साथ बैठाकर प्राचार्य किसी काम से बाहर निकले। शैलेन्द्र नंबर की प्रतीक्षा करने लगा। आठवाँ नंबर भीतर गया है, तबतक एक कप चाय लाकर वह नकुल को पिला सकता है। चाय लेकर आने में देर हुई। नकुल का नंबर आ गया। कंपाउंडर नकुल का नाम पुकारता रहा। नकुल बैठा रहा। चार–पाँच बार नाम पुकारने पर भी नकुल नहीं आया, तो आगे के मरीज को बुला लिया। शैलेन्द्र चाय लेकर आया। नकुल ने चाय पी। शैलेन्द्र ने कंपाउंडर से पूछा–कौन–सा नंबर चल रहा है?

'सोलहवाँ'।

'अरे! मेरा नंबर चौदहवाँ था। नकुल कुमार।'

'नकुल कुमार को तो कई बार पुकारा, बोले क्यों नहीं?'

'चाय लाने चला गया था।'

'तुम चाय लाने गये थे, मरीज कहाँ था?'

'यहीं बैठा है, वो है नकुल कुमार।'

'अरे! तो यह बहरा है कि नाम नहीं सुना?कई बार पुकार लगायी। अब तो अंत में उसे भेजा जाएगा।'

प्राचार्य लौटकर आये। नंबर निकल जाने की जानकारी मिलते ही शैलेन्द्र पर आग–बबूला हो गये। नकुल समझ गया कि शैलेन्द्र की गलती और उसके बहरेपन के कारण नंबर आगे बढ़ गया है। वह पीं–पीं गों–गों करने लगा।

रात में नकुल को नींद नहीं आ रही थी। कितना आवश्यक है विवाह?वह सोचने लगा, अगर उसकी शादी हो गयी होती तो आज अस्पताल में कंपाउंडर के नाम पुकारते ही वह पत्नी की कान से सुना लेता। वह उसे हाथ पकड़कर डॉक्टर के पास ले जाती। नकुल पत्नी का आभारी होता। वह उसकी पूजा करता। भगवान तुमने भी आज धोखा दिया?क्यों नहीं बता दिया कि मुझे अपना नाम लिखना था?इतना बड़ा धोखा क्यों?भेजो भगवान! किसी बेटीवाले को भजो। नकुल किसी भी लड़की से शादी कर लेगा। लंगड़ी या अंधी भी होगी तो वह शादी करेगा। हाँ, उसे गूँगी–बहरी नहीं होनी चाहिए। कितनी अच्छी जिंदगी है भैया की। भैया बाहर मजदूरी करने जाते हैं। भाभी मवेशी पालती है। भैया के लिए रोटी बनाकर रखती है। बउआ को पालती है, उसे चलना सिखाती है, बोलना सिखाती है। उफ्! अगर नकुल को बच्चे हुए होते तो वह उन्हें बोलना कैसे सिखाएगा?यह तो मुसीबत होगी। कोई मुसीबत नहीं होगी। नकुल बच्चे को चलना सिखाएगा और पत्नी बोलना सिखा देगी और कहीं बच्चा बाप की तरह गूँगा हो गया तो?क्या?नहीं–नहीं, ऐसा नहीं होगा। भगवान अब धोखा नहीं देगा। अगर उसने धोखा दिया तो आसमान पर चढ़कर उसे मारेगा। बहुत मारेगा। बहुत मारेगा। पीं–पीं गों–गों गों–गों शोर करने लगा नकुल। रात के दो बज रहे थे। हॉस्टल के सभी लोग जाग गये। नकुल के पास पहुँचे। पसीना से तर–ब–तर नकुल हवा में घूसा चलाकर किसी को मारते हुए गों–गों कर रहा था। प्राचार्य भी पहुँचे। सभी कर्मचारी कहने लगे–'नकुल के घाव का दर्द बढ़ गया है।' प्राचार्य जानते थे–आज नकुल शरीर के दर्द से नहीं, विवाह के संभावनाओं के क्षीण हो जाने की पीड़ा से त्रस्त है। उन्होंने उसे सान्त्वना दी। मोबाईल फोन पर झूठ–मूठ का नंबर डायल कर किसी से बात करने का स्वांग रचाने के बाद नकुल को बताया कि उसकी शादी का प्रस्ताव लेकर पुनः वे लोग आयेंगे। नकुल का भगवान के प्रति टूटता–सूखता विश्वास फिर एक बार पल्लवित हो उठा। वह सो गया।

सुबह देर तक किचेन भीतर से बंद कर वह सोया था। उसे जगाने के लिए शैलेन्द्र दरवाजा पीट रहा था। देर तक दरवाजा पीटने की आवाज सुनकर हॉस्टल के कर्मचारी वहाँ जमा हो गये। प्राचार्य भी आये। क्यों दरवाजा पीट रहे हो?बहरा नकुल आवाज सुनेगा?वह तो बहरा है ही, तुमलोग भी पागल हो। फिर किचेन की खुली खिड़की से बाँस घुसाकर सोय हुए नकुल की देह को धकेला जाने लगा। उसकी नींद टूटी। अरे! सबेरा हो गया?वह अबतक सोया है। बच्चों के नाश्ता का समय हो गया। उसने जीभ निकालकर दाँत दबायी। दरवाजा खोला, उसका चेहरा लज्जित था।

प्राचार्य को अकेले बैठे देखकर नकुल उनके पास जाकर फिर एकबार आश्वस्त होने चला गया कि वे फिर आयेंगे। प्राचार्य उसे अब धोखे में रखना नहीं चाहते थे। स्थिति बिगड़ रही है। नकुल को सच्चाई से अवगत कराकर उसे संतुलित करना होगा। उन्होंने उसे शाम को बुलाया।

शाम में नकुल शादी का धनडाला बनानेवाले आदमी को साथ लेकर प्राचार्य के कमरे में पहुँचा। उस आदमी ने प्राचार्य से पूछा कि नकुल की शादी कब हो रही है?वह धनडाला बनाने का ऑर्डर दे रहा है। नकुल टेंट हाउसवाले और बाजावाले के पास भी गया था। प्राचार्य की चिंता बढ़ गई। नकुल के बाहर निकलने पर उन्होंने प्रतिबंध लगा रखा था। फिर किस समय भागकर यह किस–किसके पास चला गया। नकुल का उद्वेग इतना तीव्र है कि अचानक ब्रेक लगाने पर दुर्घटना की आशंका उठ खड़ी होती है। उन्होंने नकुल को समझाया कि इस वर्ष लगन समाप्त हो चुका है। अब उसकी शादी अगले साल होगी। नकुल समझ गया कि उसे फुसलाया जा रहा है। वह माथा पीटता हुआ प्राचार्य के कमरे से बाहर आया। फिर छाती पीट–पीटकर वह रोने लगा। उसने आसमान की ओर सर उठाया। अंगुली ऊपर की ओर दिखाते हुए पीं–पीं गों–गों गों–गों करने लगा। भगवान तुमने क्यों दगा दिया?मैं कामचोर हूँ, रोगी हूँ, शराबी हूँ, जुआरी हूँ, चोर हूँ, डाकू हूँ, मैं पत्नी को कमाकर नहीं खिला सकता, मैं कुरूप हूँ?क्यों नहीं मेरी जोड़ी बनायी?कहाँ है लड़की, जो मेरी पत्नी बनेगी?पीं–पीं, गों–गों छाती पीटकर रोते नकुल के आँसू से पूरा स्कूल भींग गया। बड़ी मुश्किल से प्राचार्य ने उसे संभाला और अगले साल की प्रतीक्षा करने को कहा।

फुर्सत की घड़ी में नकुल अब भी उसी खिड़की के समीप बैठकर मुख्य सड़क की ओर देखता रहता है। उसकी आँखों में वही अंतहीन प्रतीक्षा पसरी हुई है।

दोहा

युवा चेतना

प्रो. शरद नारायण खरे
महिला महाविद्यालय मंडला
मो० 9435484382

युवा चेतना दे रहे, स्वामीजी सानंद
था विवेक पाया सदा, इसीलिए आनंद
किये काम सो हैं अमर, सदा रहेंगे पास
नव उजास नव तेज में, ऊर्जा का अहसास
अमेरिका में छा गये, दे संस्कृति का ज्ञान
सकल विश्व में बढ़ गया,तब भारत का मान
परिभाषित कर धर्म को, फैलाया आलोक
खुशी हर्ष उल्लास दे, परे हटाया शोक
मानवता की भावना, सद्भावों का सार
देकर के हरएक को, महकाया संसार
सभी धर्म तो श्रेष्ठ हैं, दिया प्रखर आवेश
हिलमिलकर सारे रहो, दिया नवल संदेश
परमहंस के ज्ञान को, देकर व्यापक मान
आदर्शों को संग ले, रच डाला अभियान
दुनिया करने लग गई, भारत की जयकार
निज करनी निज ज्ञान से, दिया हमें उपहार
इंसानी जज्बात हैं, तब ही मानव खास
सिखलाया हमको यही, हो मानवता–वास
'शरद' करे उनको नमन, ये संतों के संत
जबतक उनकी सीख है, नहीं सत्य का अंत।

कहानी

अपराधी

कुमार शर्मा 'अनिल'
मोहाली, पंजाब
9914882239

आम की फुनगी हिली और तपती दुपहर में लू से बदहवास टिटहरी उड़ी, तो सुखिया चाची की बदहवास आँखें एक विश्वास का बोझ उठाए आम की कच्ची बरौनियों पर टिक गयीं। जून के बयालीस डिग्री तापमान और उमस में पसीने आँसुओं के गंगा–जमुनी संगम में नहाया सुखिया चाची की सोच में गुम चेहरा। मैं सूती साड़ी के कोर से धीरे–से उनकी आँखें पोंछता हूँ तो बिलख उठती हैं चाची–'हरामी! मरने से पहले ये भी ना सोचा कि बूढ़ी किसके सहारे जिएगी!' करुणा और ममता से भींगे शब्द मुझे अंदर तक भिंगो जाते हैं।

धरमवीर का हर वक्त तमतमाया चेहरा मेरी आँखों के आगे घूम गया।

कौन बहन का यार कह सकता है दावे से कि वह हराम की औलाद नहीं तू बोल किसना! तू कर सकता है दावा कि चाचा ही तेरे असली पिता हैं। बुरा मत मानियो, कमला चाची के चरित्र पर छींटे नहीं उछाल रहा मैं, मेरी माँ जैसी ही है कमला चाची। लेकिन तू बता किसना! दुनिया का कौन आदमी इस बात की गारंटी देता है कि....!

क्रोध में मनुष्य अपने मन की बात नहीं कहता, वह केवल वही कहता है, जिससे दूसरों का दिल दुखे। मैं उसे समझाता–तू क्यों लोगों की बातों पर कान देता है। हर बात को घुमा फिराकर वहीं.... उसी बात पर ले आता है कि तेरा जन्म चाचा के मरने के बाद विधवा चाची की कोख से हुआ। तुझे तो अब कहते हैं लोग... चाची ने तो पूरा जीवन सही है गाँव भर की गालियाँ। किसी तरह पाला है उन्होंने तुझे... सबसे लड़कर। एक माँ की तरह नहीं, एक बाप बनकर।

अम्मा का कोई दोष नहीं देता मैं, वह तैश में आ जाती, वह चाहती तो मुझे कोख में ही मार सकती थी। गुस्सा तो मुझे इन गाँववालों पर है, जो अम्मा को दोषी मानते हैं और मुझे हरामी कहते हैं। इन सबको इस बात का दुख है कि मर क्यों नहीं गई अम्मा, मुझे जन्म क्यों दिया, पाला–पोसा क्यों? असह्य क्रोध से उसका चेहरा तमतमा उठाता। तू देखियो किसना! जिस दिन भी मुझे पता चला कि कौन था वो, उसी दिन उसकी बहू–बेटियों की भी वही हस्र करूँगा, बस पता चलने दे मुझे।

क्या करेगा तू? मैं उसे समझाता। कुछ उल्टा–सीधा करके जेल जाएगा और जैसे अबतक रोती रही है सुखिया चाची, वैसे ही आगे भी रो–रोकर अपनी जान दे देगी, इस बारे में सोचा है तूने?

मुझे नहीं मतलब किसी से, मुझे बस बदला लेना है और किसना! बदला मुझे अपनी अम्मा की बेइज्जती का नहीं लेना, बदला लेना है मुझे अपनी बेइज्जती का, समझ गया तू? वह तेजी से वहाँ से चल देता।

धरमवीर बचपन से ही मेरा दोस्त था। हम साथ खेले–पढ़े थे। बचपन से ही मुझे ना जाने क्यों उससे सहानुभूति थी। गाजियाबाद से सटे गाँव की कुल आबादी पाँच हजार भी नहीं थी। सारे गाँव में सभी एक–दूसरे को नाम से पहचानते थे। दूर–दूर तक फैले खेत, कच्ची सड़कें और पगडंडियों.... विकास से कोसों दूर। गाँव में स्कूल मात्र आठवीं तक था और आठवीं तक ही धरमवीर और मैं साथ–साथ पढ़े थे। आठवीं में फेल होने के बाद उसने पढ़ाई छोड़ दी और घर की खेती संभाल ली। पढ़ाई में उसका शुरू से ही मन नहीं लगता था। इसका एक कारण यह भी था कि स्कूल के बच्चे ही नहीं, मास्टरजी भी उसे 'हराम' कहते थे। शुरू–शुरू में मेरी तरह उसे भी शब्द मात्र एक गाली की तरह लगता, लेकिन जैसे–जैसे वह बड़ा होता गया, इस शब्द का अर्थ समझने लगा था। गाँव के दकियानुसी माहौल में हमउम्र के बच्चों को उनके माँ–बाप की ओर से सख्त मनाही थी कि वे धरमवीर के साथ ना ही खेलें और ना ही उसके घर जाएँ। सिर्फ एक मेरा घर था, जहाँ उसका जाना–आना होता था। वह भी इस कारण कि वह मेरे पड़ोस में ही रहता था और मेरा सबसे अच्छा दोस्त था। जब माँ–बाबूजी दबे स्वर में उसका विरोध करते, तो मैं उसके समर्थन में खड़ा हो जाता–''सजा तो उसको मिलनी चाहिए थी, जिसने 'अपराध' किया है। आप धरमवीर को किस बात की सजा देना चाहते हो? सभी जानते थे कि यह अपराध गाँव के ही किसी दबंग व्यक्ति का है। तो जिन लोगों को शक था, उनसे पूछताछ क्यों नहीं की गई? उस समय तो गाँव की बदनामी का डर दिखाकर सुखिया चाची को पुलिस में रपट तक नहीं लिखाने दी। असली अत्याचार तो चाची और धरमवीर के साथ हुआ है''–मैं तैश में आ जाता–''और अपराधी अब भी खुला घूम रहा है।''

''सब कुछ जानती है कि कुलच्छिनी''–अम्मा अपनी खीज उतारती–''विदेशी नहीं था कोई....आँखों पे पट्टी नहीं बँधी थी, उसके...रात में इतना अंधेरा भी नहीं होता है कि जितना अंधेर है अंधेर...?''–अम्मा बड़बड़ाती हई सामने से हट जातीं।

मैं अंदर ही अंदर गुस्से से उफनता रहता। पूरा गाँव जानता था कि खेतों में पानी लगाकर लौटते वक्त रात सुनसान गन्ने के खेतों में अपना चेहरा छुपाए व्यक्ति ने जब चाची से बलात्कार किया था, तो चाची ने बुरी तरह घायल होने की हद तक विरोध किया था। स्कूल के अभिलेखों में यद्यपि उसके पिता के नाम की जगह सुखिया चाची के स्वर्गीय पति वीरभान का ही नाम दर्ज था, किन्तु जल्दी ही उसे पता चल गया था कि मृत्यु तो उसके जन्म के एक वर्ष पूर्व ही हो चुकी थी। उसका बाप कौन है? यह प्रश्न उसे बौखला देता।

आठवीं में वह फेल हुआ और आगे पढ़ने से उसने इंकार कर दिया। सुखिया चाची उसे बहुत प्यार करतीं। उनके जीवन का एक मात्र उद्देश्य वही था। जब वह छोटा था और खेल–खेल में बच्चे आपस में झगड़ जाते थे, तो धरमवीर को आहत करने का ब्रह्मास्त्र उन्हें पता था–हरामी। यही वह शब्द था, जिसे सुनकर वह बौखला जाता। बच्चों का यह झगड़ा तब बड़ों तक पहुँच जाता है और चाची हमेशा धरमवीर का पक्ष लेतीं। यही कारण था कि गाँव भर के बच्चों को उनके माता–पिता ने उसके साथ खेलने की मनाही कर रखी थी। स्वभाव से भी वह कुछ जिद्दी और अक्खड़ किस्म का था। बात–बेबात झगड़े पर उतर आता। उसके इस स्वभाव के पीछे उसका नाजायज संतान होना मुख्य कारण था। परन्तु चाची का उसके प्रति अटूट, एकनिष्ठ प्यार भी एक वजह थी; क्योंकि वह इससे चिढ़ता था।

मैं उस जानता–''तू क्यों चाची की भावनाओं को ठेस पहुँचाता है। इस बात में तो तुझे कोई शक नहीं कि तेरा जन्म उसकी कोख से हुआ है। जमाने भर के ताने सुनकर भी उन्होंने तुझे पाला–पोसा है। माँ और बाप दोनों का प्यार दिया है तुझे।''

''सिर्फ अपने स्वार्थ के लिए किसना...अम्मा को अपने बुढ़ापे के लिए एक सहारा चाहिए था बस।''– वह फिर तैश में आ जाता–'मुझे चिढ़ होती है अम्मा के इस तरह प्यार करने से। तेरी भी तो माँ है। क्या वह इस तरह तेरी पीछे छाया की तरह लगी रहती है? अब मैं कोई बच्चा तो हूँ नहीं।

''हर माँ इसी तरह अपने बच्चों का भला चाहती है।... और फिर तुझे अपने बुढ़ापे का सहारा वह समझती है, तो इसमें बुराई क्या है?''–मैं समझाता–''मेरे माँ–बाप भी मुझसे यही अपेक्षा रखते होंगे।''

''मैं इसे गलत तो नहीं कर रहा। माँ–बाप अपने बच्चों के लिए इतना कुछ करते हैं, तो उन्हें हक है ऐसा सोचने का। सारी दुनिया इसी लेन–देन पर चलती है। सारे रिश्ते स्वार्थ पर टिके हैं, यही सच्चाई है। बाकी सब ढकोसला है। कौन नहीं जानता कि एक औरत दो वक्त की रोटी और सामाजिक सुरक्षा के नाम पर अपना शरीर और आत्मा आदमी के पास गिरवी रख देती है और आदमी अपनी शारीरिक भूख के बदले में औरत को पालता है। बस एक यही

रिश्ता है आदमी औरत की बाकी सब दिखावा। पूरे गाँव में ये औरतें हैं ना, सब की सब आदमियों की पालतू हैं।''

''इसका मतलब इस एक रिश्ता के अलावा और कोई नहीं है इस दुनिया में?'' मैं नाराज हो कहता–''तू एक बीमार मानसिकता को पाल रहा है।''

''जानता हूँ मैं, लेकिन काश ऐसा नहीं होता। मैं चाहूँ तो भी अम्मा का सहारा नहीं बन सकता''–वह मेरे पास से उठ जाता।

''मैं चाहूँ तो भी अम्मा का सहारा नहीं बन सकता।'' उसके इस कथन का आशय मैं समझता था। अतीत के कंदराओं के यातना–कक्ष से उठता स्मृतियों का आर्तनाद हमेशा उसके अवचेतन मन में गूंजता रहता। चाची से वह दिलोजान से प्यार करता था, परन्तु दिखावा ऐसा करता, जैसे वह उनसे चिढ़ता हो। इसके पीछे उसकी वही बदला लेने की मनोवृत्ति थी, जिसकी उसने अपने जीवन का एकमात्र उद्देश्य मानकर पोषित किया था। और इस उद्देश्य की पूर्ति के बाद वह जानता था कि वह चाहकर भी अपनी माँ का सहारा नहीं बन सकता। वह कहता यही था कि मुझे अपनी माँ को नहीं, बल्कि अपनी बेइज्जती का बदला लेना है, परन्तु सिर्फ मैं जानता था कि उसकी आँखों में आँसू सिर्फ तभी आते थे, जब वह कहता–''किसना, जब किसी औरत के साथ बलात्कार होता है ना, तब उसमें उसके जिस्म को नहीं, बल्कि उसकी आत्मा को इतनी गहरी चोट पहुँचती है कि उसे अपने वजूद से नफरत हो जाती है। मुझे नहीं पता दुनिया में ऐसी कौन–सी सजा है, जो उस व्यक्ति को वही अनुभूति कराये, जो औरत को होती है। तू बता किसना, तू तो इतना पढ़ा लिखा है। मैं उसे वही महसूस कराना चाहता हूँ, जो अम्मा ने उस वक्त महसूस किया होगा। बरसों से मैंने अम्मा को रात के अंधेरे में सुबकते हुए देखा है, सुना है। लेकिन मैं उसे सांत्वना भी नहीं दे सकता, क्या कहूँ उसको, भूल जा। जिस बात को मैं भूलना नहीं चाहता, उसके लिए उसको कैसे कहूँ कि भूल जा।''–यह मेरे कंधे से लगकर सुबकने लगता। अम्मा ने बहुत अच्छा किया, जो मुझे जन्म दिया, वरना उसके अपमान का बदला कौन लेता?

प्रेम और नफरत व्यक्तित्व और आदतों को अविश्वसनीय ढंग से बदल देते हैं। प्रेम और नफरत में डूबा आदमी बड़ी से बड़ी चुनौती लेने को आमदा हो जाता है। सुखिया चाची के प्यार से धरमवीर की उस बदला लेने की मनोवृत्ति का पोषण ही किया; क्योंकि मात्र दो वर्षों के अंदर ही वह अपराध की दुनिया का एक ऐसा सितारा बन गया, जिसके दुस्साहस से पूरे जिले में दहशत फैल गई। हत्या, लूटपाट और बैंक डकैती के अनेक मुकदमों में वह नामजद था।

सिर्फ हफ्ते पहले की बात है। मैं कॉलेज से लौटकर आया, तो वह मेरे इंतजार में हॉस्टल के गेट पर मौजूद था। मैं आश्चर्यचकित था कि तू यहाँ?पता है पूरे जिले की पुलिस तुझे ढूँढ़ती फिर रही है?

वह मेरे गले लग गया–''और मैं तुझे ढूँढ़ता फिर रहा हूँ। तुझे तो यहाँ कोई जानता ही नहीं किसना।''

''तीन हजार स्टूडेंट है यहाँ। कौन किसको जानता है।'' मैं चिंतित हो उठा–''तुझे सब जानते हैं, किसी ने पहचान लिया तो?''

''तू चिंता मत कर। आँख और दिमाग से आदमी पहचानता है; परन्तु बोलता तो जुबान है ना। किसकी हिम्मत है जो अपनी जुबान खोले। अच्छा ये सब छोड़। मैं तेरे पास इसलिए आया था कि तू मेरे साथ गाँव चल। मुझे थोड़ी हिम्मत रहेगी, अम्मा के सामने। बहुत नाराज है वो मुझसे।''

''क्या करेगा गाँव जाकर?सुखिया चाची को तूने कहीं मुँह दिखाने लायक नहीं छोड़ा।''–मैं छिटक गया।

तू जानता है किसना! कसम से मैंने आज तक कोई अपराध नहीं किया। एक भी नहीं। हाँ, इस गुट में मैं शामिल हूँ, पर वो सिर्फ इसलिए कि मुझे बदला लेना है अपने अपमान का। उस बदले के बाद जो अम्मा कहे या तू कहे, एक बार कहकर देखियो। कनपट्टी से लगाकर घोड़ा दबाने में एक सेकंड भी नहीं लगाऊँगा। जो सजा देना चाहो, दे दीजियो, पर उस आदमी को मैं माफ नहीं करूँगा। अम्मा तो सिर्फ रात को ही रोती थी, मैं तो चौबीसो घंटे कलपा हूँ। काश! कोई तो तरीका होता, यह जानने का कि वह था कौन?

''बीस बरस हो गये धरमवीर, बीस बरस। कहते हैं वक्त के साथ आत्मा पर लगी चोट के घाव भी भर जाते हैं, पर तूने तो इन बीस बरसों में इन घावों को नासूर बना लिया।''

''सच, एकदम सच। यही तो चाहता था मैं। इस घाव को खरोंच–खरोंचकर नासूर बनाना। इतना कि इसके मवाद और सड़ांध से मेरा जीना दूभर हो जाए। किसना, नहीं चाहता मैं जीना, बिल्कुल नहीं चाहता। लेकिन मैं मरूँगा भी नहीं तबतक, जबतक अपना बदला न ले लूँ।''

''कबतक जियेगा तू?पुलिस तेरे पीछे हाथ धोकर पड़ी है। पूरा गाँव तेरा दुश्मन है। तेरे जैसे हिस्ट्रीशूटर को पुलिस गिरफ्तार नहीं करती, सीधा एनकाउंटर करती है।''

''तू यह सब नहीं जानता किसना, तुझे बताना भी नहीं चाहता मैं। तेरे पास मैं आज सिर्फ इसलिए आया हूँ कि तू मेरे साथ गाँव चल। कुछ मेरे साथी भी होंगे। गाँव के सिर्फ दो चार लोग हैं, जिनमें से ही कोई एक था इस अपराध में शामिल। बस उन्हीं से इस बार बात करनी है। लगता है मैं जो सोच रहा हूँ, वही सच है। और अगर यह सच नहीं भी है, तो यह अपराध मैं करने जा रहा हूँ कि वे सारे, हाँ....सारे के सारे। अब और ज्यादा सहने का मादा नहीं है मेरा।''

''अच्छा किया तूने, मुझे बता दिया धरमवीर; क्योंकि अब मैं तेरे साथ गाँव नहीं जा रहा हूँ।''

''चल, ठीक है, फिर...। तेरी तरह बातों को तर्क की कसौटी पर परखने की बुद्धि नहीं है मुझमें। एक तरह से यह ठीक भी होगा। दुनिया में सिर्फ दो लोग हैं, जो मेरी कमजोरी है...एक अम्मा और दूसर तू।'' यह अपने छह फुट लंबे शरीर के साथ सीधा खड़ा हो गया। आखिरी बार गले तो मिल ले। उसने अपनी बलिष्ठ बाहें एक मासूम बच्चे की तरह फैला दी। मैंने अपने कमजोर से शरीर को जब उसकी बाहों के हवाले किया तो एक बार मुझे फिर अहसास हुआ कि उसके चौड़े और मजबूत सीने में एक बहुत ही संवदेनशील दिल है।

'सिर्फ तुझसे कहूँगा किसना, मैं इस गिरोह में जुड़ा हुआ जरूर हूँ अपने मकसद से; लेकिन मैंने अबतक किसी अपराध में हिस्सा नहीं लिया। पुलिस के सारे मामले झूठ हैं। मैंने देखा उसकी आँखों में आँसू हैं, जिन्हें छिपाते हुए वह एकाएक कमरे से बाहर निकल गया। एक तू ही तो था, जो मुझपर विश्वास करता, बाकी तेरी इच्छा।

जब मैं गाँव पहुँचा, तब मुझे पूरी कहानी पता चली। अपने चार साथियों के साथ जिन तीन लोगों पर उसे शक था, उन्हें बंधक बनाकर वे गाँव के बाहर बने उस पवित्र मंदिर में ले गये, जहाँ पुजारी रामदरस अपने परिवार सहित रहते थे। पुजारी रामदरस बड़े ही धार्मिक प्रवृत्ति के थे और गाँवभर में उसका सम्मान था। गाँव के उस पुरातन मंदिर में गाँववालों की बडी आस्था थी और उसकी कसमें भी खाई जाती थीं।

आगे की कहानी बस इतनी है कि दोषी उन तीनों में से कोई नहीं था, लेकिन उसके बदमाश साथियों की नजरों में पुजारी रामदरस की बीस वर्षीया लड़की पूजा आ गई। उसे उठाकर जब वे खेतों में बने एक ट्यूबवेल पर ले गये, तब धरमवीर अपने घर सुखिया चाची से मिलने आया हुआ था।

पुजारी रामदरस रोते–गिड़गिड़ाते सुखिया चाची के घर पहुँचे और उसके कदमों में गिर पड़े, बचा ले उसे, मेरा कहा नहीं मानेगा धरमवीर।

अंदर कमरे में बैठा धरमवीर सब सुन रहा था। वह क्रोध से चिल्लाया, ''कोई नहीं बचाएगा चाचा, यह तो इस गाँव की परंपरा है। वह बाहर निकल आया। अम्मा भी तब ऐसे ही गिड़गिड़ाई होगी। तब आया था गाँव का कोई मर्द उसे बचाने। अब इस गाँव में हरामी ही पैदा होंगे चाचा।''

पुजारी रामदरस धरमवीर के कदमों में गिर पड़े। तुझसे नहीं कहूँगा, धरमवीर...पूजा को बचाने के लिए। लेकिन इतना जरूर कहूँगा कि यह सब देखने से पहले ही मझे गोली मार दे। कर ले अपना बदला पूरा। मैं ही हूँ तेरा

कहानी

बगड़ी

डॉ विनयकृष्ण
बेतिया, प. चंपारण
मो0–9931800313

मुझे अभी मालूम नहीं कि वह मुहल्ले में कितने वर्षों से थी। हाँ, इतना जरूर याद है कि बचपन से ही मैं उसे देखता आ रहा हूँ।यह बात मुझे भी अच्छी तरह याद है कि जब हम खेल रहे होते तो वह अक्सर हमारे खेल के छोटे–से मैदान के बाहर खड़ी रहती। वही बिखरे बाल, अजीब–सा कुरूप चेहरा, कभी चिथड़े लपेटे, कभी फटी साड़ी बेतरतीव ढंग से बाँधे।हमें खेलते, दौड़ते, भागते देखकर वह भी थोड़ा बहुत उछलती, तालियाँ पीटती और हँसती 'ही ही ही ही'। उसकी उम्र का सही अनुमान भी नहीं था किसी को। कभी–कभी बीमार भी पड़ती, पर इसका उसे भान नहीं होता...बगड़ी जो थी... मंदबुद्धि, अधपगली।

जब बुखार या किसी अन्य बीमारी से बुरी तरह ग्रस्त हो जाती, तब लुढ़क जाती किसी के बरामदे में।फिर कोई खिला देता, कोई दवा दे देता।पर हाँ, एक विशेषता थी उसमें, चाहे वह भूखी हो या बीमार अथवा स्वस्थ, बात–बात पर हँसना नहीं छोड़ती–'ही ही ही ही'। हँसते वक्त उसके आगे के सारे दाँत दिखने लगते और धँसी कमजोर छोटी–छोटी आँखों में एक अजीब चमक आ जाती,एकदम बाल सुलभ।

हाँलाकि उसकी कोई इज्जत नहीं थी, फिर भी मुहल्ले का चौकीदार रात–विरात उसकी इज्जता बचाता था, उन लफंगों से जो शराब के नशे में पागल और स्वस्थ, कुरूप और सुन्दर में कोई अंतर नहीं समझते थे। उनका नाम भी क्या था, कोई नहीं जानता, सभी उसे बगड़ी कहकर बुलाते या संबोधित करते थे। वह भी बगड़ी बुलाये जाने पर कोई विरोध नहीं जताती और चली आती दाँत निपोरते–'ही ही ही ही'। मुहल्ले की औरतों से वह बातें भी करती और कभी–कभी गुस्सा होकर गालियाँ भी दे देती, पर कोई बुरा भी नहीं मानता।बगड़ी जो थी मंदबुद्धि!

बगड़ी को कोई दुःख नहीं महसूस होता, पर जब भूख लगने पर कोई उसे बचा–खुचा या जूठा भोजन खाने को नहीं देता, तो जरूर बुरा लगता।ऐसे समय वह कुछ व्यक्ति विशेष को, जिनका नाम उसे याद रहता, उन्हें इंगित कर गाली जरूर देती; क्योंकि वे ही कुछ लोग ऐसे थे, जो अन्य के मुकाबले उसे अधिक बार खाने को रोटी या पहनने को फटे पुराने कपड़े देते थे।बगड़ी में एक और खासियत थी, मुहल्ले में किसी के यहाँ कोई उत्सव या मातम होता, वह जरूर पहुँचती।मातम होने पर तो नहीं, पर उत्सव होने पर वह भी थोड़ा सज–सँवर लेती और पहुँच जाती भाग लेने।शादी–ब्याह और तीज त्योहारों में तो वह खूब खाती–पीती और अन्य दिनों की अपेक्षा ज्यादा हँसती, पर मातम होने पर वह कभी नहीं हँसती या खाना नहीं मिलने पर गाली भी नहीं देती।

कभी–कभी मुहल्ले के शरारती बच्चे उसे तंग किया करते।वे वहाँ पहुँच जाते, जहाँ वह रहती या यूँ कहें कि अधिक समय गुजारती थी, एक छोटी–सी करकट की गुमटी, जो औरों के किसी काम का न था और उसी गुमटी में बगड़ी का सामान जैसे कुछ पुराने मैले चिथड़े, टिन के छोटे डब्बे, पावरोटी के रैपर, मिठाइयों के खाली पैकेट और इसी तरह के सामान, यही उसकी थाती थी।

बच्चे जब उसे तंग करते तो वह उन्हें भगाने की भरसक कोशिश करती।जब बच्चे नहीं भागते तो वह उनपर ढेला या पत्थर के टुकड़े चलाती, पर बचा के चलाती, कहीं लग न जाए, सिर्फ डराने के लिए।मूढ़ होने के बाद भी इतनी बुद्धि थी उसमें।पर मुहल्ले में जाकर वह बच्चों की शिकायत भी करना नहीं भूलती।एक दिन बगड़ी को भी शादी करने का भूत सवार हुआ; क्योंकि उसने हाल में बीते एक विवाह समारोह में दुल्हा–दुल्हन के जोड़े को देखा था, उसे बहुत अच्छा लगा।वह भी शादी कर वैसे ही दुल्हा के बगलवाली कुर्सी पर बैठना चाहती थी, जैसे वरमाला के समय शादी के जोड़े बैठते हैं।उसका मानना था कि दुल्हन ने बहुत सारे कपड़े पहने थे, उसे ठंढ कम लगती होगी, जब वह भी दुल्हन बन जाएगी, तो उसे भी कपड़े मिल जायेंगे और उसे ठंढ नहीं सताएगी और खाने को भी भरपेट खाना मिलेगा।मुहल्ले के किसी औरत ने उसे लिपिस्टिक लगा दिया, बिंदी लगा दी और उसे आईना दिखाया कि लो बन गयी दुल्हन!बगड़ी मारे खुशी के झुम उठी और सिर पर चट्टी की फटी बोरी ओढ़कर नाचने लगी और साथ में हँसती जा रही थी–'ही ही ही ही'। सबका खूब मनोरंजन हुआ।

बगड़ी अब बूढ़ी हो चली थी।उस दिन जमकर बारिश हुई थी और बच्चों के साथ बगड़ी भी बारिश में खूब भींगी।बारिश के बाद बच्चे तो अपने अपने घरों में भाग गये और कपड़े बदले, पर बगड़ी का क्या, वह वैसे ही रही। फिर उसे बुखार हो गया।सारी रात तपती रही, वह और खाँसती रही।सुबह किसी ने देखा और एक पुरान कंबल लाकर ओढ़ाया, दवा भी लाकर खिलाया, पर अबकी दवा काम नहीं कर सका।बगड़ी का बुखार बढ़ता गया।दो दिन, चार दिन, दस दिन, एक हफ्ते के बाद भी बुखार वैसे ही था।मुहल्लेवाले कभी कभार देख आते उसे, कोई खाना दे देता, कोई दवा खिला देता।बुखार के कारण बगड़ी बेहद कमजोर हो गयी थी, पर बच्चों को छेड़ने पर अब भी हँस देती थी–'ही ही ही ही'। पर आँखों की चमक उसकी बुझती जा रही थी।उस रात बगड़ी की तबीयत बहुत बिगड़ गई थी, बुखार से लचर हो चुका था उसका शरीर और तप उठा था।कंठ से खाँसी आ रही थी,शायद निमोनिया हो गया था।रात को ड्यूटी कर रहे चौकीदार ने उसके गुमटी के पास चक्कर लगाते हुए एक दो बार उसे आवाज भी दिया–'का रे बगड़ी! कैसी है?पर बगड़ी सिर्फ कमजोर घरघराहट के साथ खाँसती रही। चौकीदार ने पास जाकर देखा, उसकी हालत ठीक नहीं थी।तेरी तबीयत तो आज बहुत खराब है।अच्छा, कल सुबह डॉक्टर बाबू से दवा लाकर खिलाएँगे तुझे, चिंता मत कर बगड़ी।' चौकीदार रात भर ड्यूटी करता रहा और बगड़ी रातभर बीमारी से जुझती रही, पर कब तक।सुबह शरारती बच्चों की टोली बगड़ी की गुमटी के पास आयी।उन्होंने उसे छेड़ा, पर वह शांत पड़ी थी।एक बच्चे ने उसे छड़ी से कोंचा भी, पर फिर भी वह नहीं हिली। बच्चों ने उसे बगड़ी बगड़ी कहकर बहुत बुलाया, पर वह नहीं बोली।

'क्या हुआ?' किसी ने बच्चों से पूछा।देखिए न बगड़ी को क्या हुआ, आज कुछ बोल भी नहीं रही है।'बगड़ी....ऐ बगड़ी!' उस व्यक्ति ने बगड़ी को पुकारा, पर बगड़ी ने अबकी न ही कोई जवाब दिया और न हमेशा की तरह हँसी 'ही ही ही ही'। वह शांत हो चुकी थी सदा के लिए।वह मर चुकी थी। धीरे–धीरे पूरे मुहल्ले में यह खबर फैल गयी कि बगड़ी मर गयी। एक–एक कर सभी देखने गये उसे।वह किसी के घर की सदस्य नहीं थी, फिर भी उसके मरने का दुःख सबको हुआ।

कहानी

दुविधा

प्रो0 अब्दुल बारी 'साकी'
अररिया
मो0–8603903150

छित्तन की पत्नी की मौत बीते महीने हुई थी। इसके उपरान्त धीरे–धीरे सब कुछ सामान्य होने लगा था। अब तो पता भी नहीं चल रहा था कि परिवार में शोक है या उनके घर किसी की मृत्यु हुई है। बीतते समय के बहू एकदम आश्चर्यचकित रह गई। उनकी बेचैनी देखने लायक थी। दिनभर वह काफी तनावग्रस्त रही। रात में जब पति घर पहुँचा, तो उसने उसे सारी बातें बता दीं। बस अगले ही दिन छित्तन के बेटे व बहू उसे नजरअंदाज करने लगे। उसे प्रायः आखिर में बचा–खुचा खाना दिया जाता। किसी दिन तो वो भी नहीं। कभी उसे दिन का खाना नसीब होता तो कभी रात में। अचानक इस बदलाव से स्वयं छित्तन भी अचंभित थे। प्रायः वे दरवाजा के एक किनारे बेटे–बहू, पोते–पोती को आंगन–द्वार करते टुकुर–टुकुर देखता रहता। कभी वह इन बच्चों से मुस्कुराकर पूछ लेता–पिंकु बेटा, तुम खाना खा चुके?बच्चे हाँ में जवाब देकर इधर से उधर फुदक जाते, जिससे छित्तन स्वयं भी शायद उनसे घृणा करने लगे हैं। तभी तो वे छित्तन के करीब नहीं आते।

इस वजह से भी वे अपने ही घर में स्वयं को अजनबी व अछूत महसूस करने लगे हैं। दरवाजा के किनारे घंटों झक मारने के बाद प्रायः वे उदास मन से सूरज डूबने के करीब गाँव के हटिया पर टहलते हुए चले जाते। दुकानदार से एक बिस्किट लेकर दाँतों तले दबाते हुए एक ग्लास पानी और फिर एक कप चाय से अपनी भूख और प्यास बुझाने की कोशिश करते। यह सिलसिला महीना भर चलता रहा। इस दरम्यान वे अपनी व्यथा किसी से बताने के लिए परहेज करते रहे। वह सोचता, किसी को बताने से बेटे–बहू की खिंचाई तो होगी, साथ ही उनकी भी बदनामी होगी। कुछ लोग उनके दुःख में शामिल हो सकते हैं, लेकिन अधिक लोग चटखारे लेकर उनकी खिल्ली उड़ाएँगे। दूसरी बात यह कि वे सदा के लिए बेटे–बहू की आँखों की किरकिरी बने रहेंगे। मगर खामोश रहने पर उनकी यह दशा?करें, तो क्या करें?इस दुविधा में भी पन्द्रह दिन बीत गये। पर अब तो ठहर–ठहरकर उनका मन खिसियाने लगा थां उनके मन–मस्तिष्क में हर हमेशा एक ही बात गोते लगा रही थी कि पिताजी की आकस्मिक मृत्यु के बाद पाँच बीघे मौरोसी जमीन पर दिन–रात कड़ी मेहनत करके परिवार की गाड़ी चलाया। बड़े–से–बड़ा संकट की घड़ी में भी मैंने एक टुकड़ा जमीन नहीं बेची। मैंने तो इस हद तक सोचा, मुझे कष्ट होता है, तो होने दे। ऊपरवाला मुझे इसे झेलने की शक्ति प्रदान करे। मगर मेरे बच्चे को भविष्य में कभी असुविधा न हो! इनकी जीवन शैली हमसे कहीं बेहतर हो! मगर आज...। वैसे अब भी इन सारी संपत्ति का असली मालिक तो मैं ही हूँ। कमी में कमी सिर्फ एक अदद पत्नी की कमी है मुझे। हद हो गई, सिर्फ एक पत्नी की अनुपस्थिति में मेरी यह दुर्दशा। नहीं.... । मुझे कुछ करना चाहिए। बल्कि अब तो न चाहते हुए भी मुझे कुछ करना ही पड़ेगा।

अगले दिन उसने गाँव के कुछ जिम्मेदार लोगों को अपने निवास पर आने का आग्रह किया। पर नियत दिन समय पर कोई नहीं आये, तो छित्तन को काफी निराशा हुई। दोपहर के बाद उसने दो व्यक्ति से पुनः मुलाकात की और उसके समक्ष गिड़गिड़ाते हुए रो पड़े। उनकी हालत देखकर दोनों आदमियों ने उसे विश्वास दिलाया कि वे कल सूरज निकलने के बाद ही उनके घर पर जाएँगे। यदि रातभर जीवित रह गये तो!

सुबह हुई। पौ फटने के बाद दोनों आदमी एक साथ छित्तन के घर पर आये। उन दोनों को दरवाजा पर विराजमान देखकर छित्तन के बेटे जित्तन को समझने में देर न लगी। उसने फरार होने की योजना बनाई। आंगन से निकलकर तेज कदमों से आगे बढ़ा। तत्क्षण वहाँ मौजूद दो में एक व्यक्ति ने उसे आवाज दी–जित्तन! कहाँ जा रहा है?वह बोला–मैं हटिया जा रहा हूँ सब्जी लाने। उक्त व्यक्ति ने एतराज किया–सब्जी तो दस बजे तक मिलती है। तुम जरा करीब आकर हमारे साथ बैठो। पाँच–दस मिनट की ही तो बात है। इसपर जित्तन ने भी एतराज किया। आप सिर्फ दस मिनट बैठिए, मैं तुरंत वापस आ रहा हूँ। अब दोनों आदमी अपनी जगह खड़े होकर एक स्वर में कहा–पहले तुम हमारी बातें सुन लो। सब्जी की कीमत हमलोगों से ज्यादा नहीं है। जित्तन ने मन में सोचा, क्या मैंने चोरी की है?क्या मैं पॉकेटमार हूँ?कुछ भी नहीं, तो इन लोगों से डरने की क्या जरूरत?थोड़ी देर बैठ जाते हैं इनके साथ। यदि मेरे मान–सम्मान के खिलाफ कोई बातें हुईं, तो मुँहतोड़ जवाब देंगे।

साइकिल खड़ी कर जित्तन आगे बढ़कर बरामदे पर एक किनारे बैठा। शिष्टाचार एक–दूसरे की खबर व खैरियत जाने के बाद एक व्यक्ति ने छित्तन से कहा–छित्तन! कहिए, क्या बात है?हसरत भरी निगाह से छित्तन ने उनकी तरफ देखा और बोला–हम तो आपलोगों को पहले ही बता चुके हैं। इसपर दोनों व्यक्ति ने एक स्वर में छित्तन से कहा–हाँ, आपने सुनायी थीं अपनी बातें, मगर यहाँ एक बार बोलिए। छित्तन ने बेटे की तरफ देखा और पलकें झपककर बोला–पत्नी मरने के एक महीन के बाद वे इस घर में अजनबी की तरह रह रहे हैं। मेरे खाने–पीने का भी कोई ठिकाना नहीं...। वे भावुक हो गये। उनकी आँखें डबडबा गयीं। उनका दुखड़ा सुनकर लोग उन्हें चुप करा दिया और जितन से पूछा–यह सब क्या हो रहा है?जित्तन! आखिर क्या कसूर है इनका?इसपर जित्तन ने लापरवाही से जवाब दिया–क्या कसूर होगा?खोजने पर...। हाँ, एक बात और! थाली में खाना परोसा रहता है और यह नवाब के बेटे का अता–पता नहीं। थाली हाथ में लेकर तो कोई इनके पीछे–पीछे घूम नहीं सकता। यह सुनकर छित्तन हड़बड़ाया। वह कुछ बोलना चाहता था। पर उपस्थित लोगों ने उन्हें चुप रहने की सलाह दी। खाना तैयार हो जाने पर स्वयं खा लेना चाहिए। जित्तन ने आत्मविश्वास के लबरेज होकर यह बातें कहीं। उनका जवाब सुनकर लोग ठिठक गये। वे एक–दूसरे का मुँह ताकने लगे। फिर भी एक व्यक्ति ने जित्तन को समझाते हुए कहा–सुनो, बाप–बेटे के बीच हमलोग पंचायती करने नहीं आए हैं। हाँ, अगर किसी तरह की गलतफहमी हुई तुम दोनों के बीच तो हमलोग उसे दूर करने की कोशिश करेंगे। सुनो, ज्यादा आदमी भी नहीं है यहाँ–एक बाप और एक बेटा। समझदारी से काम लेना चाहिए। इसने तुमको पैदा किया। पाल–पोसकर..... । बीच में ही जित्तन ने उसे टोका–आपलोग इतने बुजुर्ग और अनुभवी होकर भी इतनी फुहड़ बातें करते हैं। पैदा तो सबों को भगवान ही करता है। यह हमको....?यह.....यह अपना शौक कर रहे थे कि मैं पैदा हो गया। इतना सुनते ही वे लोग बड़बड़ाते हुए अपनी जगह उठ खड़े हुए। बुरा–सा मुँह बनाकर एक ने दूसरे कहा–ऐसा बदतमीज औलाद से बेऔलाद रहना ही बेहतर है।

कहानी

अंत की शुरूआत या दुखते सुख की मिठास

सुभाष चन्द्र झा
(बिहार प्रशासनिक सेवा)
संयुक्त आयुक्त–सह–सचिव, क्षेत्रीय परिवहन प्राधिकार
भागलपुर प्रमण्डल, भागलपुर–812002
9431208428, 7546022022

पहचाना मुझे' ?'नहीं न'!!

नहीं पहचाना–ऐसा जान कर सच बिल्कुल भी मुझे कहीं से ख़राब नहीं लगा। वैसे भी एक साधारण स्त्री को उसके स्वजनों–परिजनों तथा आस–पास निवास करनेवालों के अतिरिक्त साधारणतः कोई भी नहीं जानता–पहचानता! जो कुछ लोग उसे जानते भी हैं, वे उसे अमुक की बेटी, बहन, मां, पत्नी, भाभी, चाची या ऐसे ही किसी अन्य रूप में ही जानते हैं। किंतु उसके इस अपरिचय या बहुत थोड़े–से परिचय के बावजूद उसका अपना एक स्वतंत्र निजी अस्तित्व फ़िर भी होता है! भले ही कोई याद न रखे, तमाम नातों–रिश्तों के बीच उसका अपना एक पथ्थक् नाम भी होता है, अपरिचय के बाद भी एक अलग व्यक्तित्व होता है स्वाभाविक रूप से, स्वाभिमान होता है अनिवार्य रूप से।

वह कोई भी स्त्री, जो समाज में निहायत अनज़ानी या अल्प–परिचिता है, अपने अज्ञात–अल्पतम ज्ञात परिचय के बाद भी अपने अस्तित्व को बनाये रखने की नैसर्गिक इच्छा हमेशा अपने हृदय में संजोकर रखती है, ज़तन से पालती है। वह केवल इच्छा ही नहीं पालती, वरन ज़रूरत पड़ने पर उस अस्तित्व को बनाये रखने के लिए संघर्ष भी करती है। उसके इस संघर्ष से समाज में कोई उथल–पुथल भले ही न हो, उसके संघर्ष से समय के पन्नों में किसी अति की सुगबुगाहट की आहट भले ही दर्ज़ न होती हो, लोग–बाग भले ही उसके समर्थन या विरोध में अपने–अपने मतों का खंडन–मंडन करते न दिखते हों, भले ही उसके चारों ओर के परिवेश में कुछ बदलता नहीं दिखता हो, पर उस संघर्ष को असफल या निरर्थक तो कतई नहीं माना जा सकता। कोई माने या न माने, उस संघर्ष से उस स्त्री के मन में अपने होने के प्रति एक आश्वस्ति जागती ज़रूर है और अपने होने की वह अनुभूति, जो उस स्त्री के मन में जागती है क्या कम बड़ी उपलब्धि है ?फ़िर उस संघर्ष को लोक–स्वीकर्षति मिले या न मिले!

वह मुझसे खुलती ही चली गई, जैसे बाढ़ में उफ़नती नदी का बांध टूट चुका हो– 'मैंने भी अपने होने की अनुभूति को बनाये रखने के लिए बहुत संघर्ष किया है, विपरीत परिस्थितियों को झेला है, भारी कष्ट उठाये हैं। न केवल मानसिक प्रताड़ना तथा सामाजिक अपमान का सामना किया है, वरन सामाजिक रूप से मान्य व स्थापित नैतिक मापदंडों का उल्लंघन भी किया है। परंतु अपने अस्तित्व के लिए यह सब करनेवाली दुनिया की न तो मैं प्रथम स्त्री हूँ और न ही अकेली!

वह बोलती ही चली गई–'बहुत पीछे छूट गये अतीत में यादों के झरोख़ों से झांक आज जब मैं अपने हृदय को टटोलती हूँ, तो मुझे अपने किये पर कोई ग्लानि, पश्चाताप, अफ़सोस, किसी प्रकार के अधर्म, पाप–बोध, अपराध–बोध की अनुभूति नहीं होती। ऐसा तो तब होता, जब कुछ त्रुटि करने की भावना या किसी प्रकार की अपराध–भावना चोरों की तरह मेरे मन के किसी कोने में दुबक कर बैठी होती'।

जैसे उसके सब्र का पैमाना छलक पड़ा हो, धारा प्रवाह बोलती ही चली गई– 'प्रणयवंचिता रह जाने का दर्द, प्रणयदान और साथ न पाने की क़सक लिए इतनी हठात् मैं तुम्हारे सामने बेबस, निरीह–सी, बिना प्रतिरोध समर्पि हो गयी। उस समर्पण के समय मेरे मन में तुम्हारे लिए एक अव्यक्त आकर्षण अवश्य था। तुम्हारे साहस, चातुर्य और सामर्थ्य पर भरोसा था। इसके बाद भी तुम्हारा प्रेम मेरे प्रारब्ध में नहीं था। यद्यपि मैंने मुमसे कोई छल नहीं किया। अपने रूप–यौवन के भ्रमजाल में तुम्हें फ़ांस न सकी और तुम मुझसे छूटकर जैसे बेदाग़ ही निकल गये। तुमसे मिले अनायास प्रेम को मैंने हृदय से स्वीकारा। हां, अपना मस्तक गर्व से उठाकर कहती हूं कि इस प्रेम को स्वीकारने के बाद मैंने उसे साधिकार पाने के लिए पुरज़ोर चेष्टा भी की एवं साहस के साथ समस्त विपरीत परिस्थितियों का सामना भी किया। प्रेम करके हार जाना मुझे बिलकुल गवारा न था'।

पुनः बोली–'आज समय के गवाक्ष से झांक कर पीछे देखती हूं, तो पाती हू कि मुझ जैसी न जाने कितनी स्त्रियों ने प्रेम किया। अपने विवश, निरीह प्रेम को लेकर दुख ही पायी। क़ाश! तुम्हारा प्रेम माखन–सा कोमल न होकर प्रस्तर शिला–सा कठोर व सुदृढ़ होता! क्यों मुझे मर–मिटने की सीमा तक लाचार किया ?तुम्हारे प्रति समर्पण अकारण या अकस्मात प्रेम की पणिति तो नहीं थी! लुट–पिट कर श्रीहीन होनेवाला प्रेम नहीं था! तुम्हारी विनम्र प्रगल्लभता और साधारण–से–साधारण क्षणों को आनंद के महान पलों में बदल डालने की तुम्हारी नैसर्गिक क्षमता के न जाने कितने
अवसरों की साक्षी रही हूं मैं । चुम्बक के विपरीत ध्रुवों में जिस तरह परस्पर आकर्षण होता है, ठीक उसी तरह हमारे विपरीत स्वभावों का आकर्षण भी हमें एक–दूसरे के प्रति प्रचंड वेग से खींचता रहा!'

उसका प्रवाह ज़ारी था–'मुझे याद है तुम कैसे प्यार–दुलार करते थे?कैसे हंसते–खेलते मीठी चुहल और शरारत करते थे ?कैसे चिढ़ाते और फ़िर बाद में ख़ुशामदी अंदाज़ में मना लेते थे ?कैसे छोटे बच्चे की तरह नटख़ट और अपनी ज़िद पर अड़–अकड़ जाया करते थे ?'

'आजकल के प्रेमी के हर कार्य में प्रदर्शन की प्रवर्षत्ति जाने या अनज़ाने में आ ही जाती है। या तो वे अपने कार्यो को दिख़ाने की चेष्टा स्वयं करते हैं या फ़िर अन्य उनके कार्यो को उत्सुकता, कौतुहल या ईर्ष्या के साथ देखने की सहज़ प्रवर्षत्ति के चलते प्रदर्शनीय बना देते हैं। ऐसे प्रदर्शन में प्रेमी के अहंकार की भावना जुड़ जाती है। परंतु तुम्हारा प्रेमकृकृकृ वह तो वायवीय आकर्षण, ज़ादुई–चमत्कारिक और अपने आप में जैसे संपूर्ण था–किसी और ही दुनिया का था! बिलकुल भोला–भाला मासूम प्रेम एवं सांसारिक बुद्धि से शून्य! सहज और अकर्षत्रिम !'

–'काल के प्रभाव से दोनों के बीच न मिटनेवाली दूरी आ गयी है! फ़िर भी संग बीते बड़े लंबे समय की मधुर मादक स्मर्षतियां आज भी मेरी मानस मंजूषा की सबसे मूल्यवान पूंज़ी हैं। उन स्मर्षतियों

की कस्तूरी सुगंध से मेरे तन–मन का हर कोना अभी भी महका हुआ है। उस स्मर्षति–चिन्ह को आज भी मैं उसी उत्सुकता से निहारती हूं और स्वयं ही शरमा जाती हूं। कभी–कभी वो प्रेम–स्मर्षति गाहे–बगाहे धधकती ज्वाला की विकराल लपट बन सम्पूर्ण मन को झुलसाती है। उत्तापित करती है। तुमसे जो सम्मान, सौभाग्य और शुद्ध प्रेम मिला–वह इस संसार का तो था ही नहीं! यह मेरे जैसी स्त्री के लिए गर्व व चरम सौभाग्य की बात है। यद्यपि तन–मन के समुद्र–मंथन से निकले हलाहल की ज़्वाला से उत्पन्न दाह की छटपटाहट अभी भी मैं महसूस करती हूं।'

ख़ैरकृकृकृ समय, विशेषकर सुख का समय बड़ी तेज़ी से बीत जाता है। क्षण कब दिवस में तथा दिवस कब वर्ष में बदल जाते हैं, पता ही नहीं चलता। ऋतुएं आती हैं और इस तरह उड़ जाती हैं जैसे खुले पात्र में रखा कर्पूर उड़ जाता है। शाश्वत् मोह कब अपनी सद्यः विकसित देह को मुग्ध भाव से चोरी–छिपे बार–बार देखने के लोभ में बदल गया, पता ही नहीं चला।

मैं तो तुम्हारे अद्भुत अभिभूत मुग्ध कर देने वाले प्रेम के मदहोश ज़ादू की गिरफ़्त में थीकृकृ वह ज़ादू जो कामनाएं जगाता है, वह ज़ादू जो दुः साहस के लिए अकसाता है, वह ज़ादू जो खुली आंखों से सुनहले सपने दिखाता है। यौवन के उन मायावी सपनों को यथार्थ में बदलने के लिए मन में जो अकुलाहट मचलती है, उसे शब्दों में समझाना असंभव है।

मुझे तुम्हारी सारी बातें आज तक याद हैं। कैसे भूल जाऊँ ?चाहने से ही भूल जाना संभव है क्या ? तुम कहा करते थे–'सौन्दर्य मानो मेरे सर्वांग में नख़–से–शिख़ तक रचा–बसा है और मेरी अतुल रूपराशि की कल्पना करना कठिन है। गोरी–चिट्टी, छप–छप गोरा रूप ऐसा जैसे कच्चे दूध में आलता मिला हो। कमलदल सदृष्श विशाल नयन, अरूण अधर, सुंदर उभरी नासिका, मोतियों सम दंतपंक्ति सुशोभित स्मित हास्य, घने नितंबस्पर्शी काले रेशमी बाल, सांचे में ढ़ला तनुमध्यमा देहयष्टि। रूप–यौवन सम्पन्न अत्यंत रूपसी।'

तुम थे–तो मेरी शाम दो घंटे पहले शुरू हो जाती थी और सुबह दो घंटे देर से होती। लहराती बलखाती सर्पीली मेरी देहराशि तुम्हारी चाहत के नीचे ढ़लान पर प्रेम की ग़हरी खाई में उतर जाती थी। आंखों में भीगा गुलाबीपन सदैव बांकी रहता। घर के सामने नीचे दूर की पहाड़ियों पर रात समय से पहले ही गदराकर गहरा जाती। मेरे और तुम्हारे बीच एक ग़हरा नीला आकाश आ जाता। नीले आसमान में एक अकेला ही बादल का टुकड़ा दिखताकृकृ घनघोर मूसलाधार बरसने को जैसे उद्धत।

दुखते हुए सुख में भीगी आज मैं किसी फ़िल्मी रंगीन परदे पर खड़ी उदास नायिका–सी वहीं–का–वहीं छूट गई हूं। कौन है, कृकृ किसके कारण सुख अनाथ होकर दुःख में बदल जाते हैं ?

भला प्रेम का सुनामी कहीं थमता है, थम सकता है! बड़े–से–बड़ा जंगी बेड़ा भी हिचकोले खा कर उसमें डूबने–उतराने लगता है और तब तक बहुत तबाही हो चुकी होती है। बड़ा जहाज एकदम नहीं डूबता! उसे डूबने में समय लगता है। वह धीरे–धीरे डूबता है। इसे बचाया भी नही जा सकता। उसका इतना बड़ा आकार ही उसे डुबाता है। यानि वह अपने ही वज़ह से डूबता है। जंगी जहाज महीनों–सालों विशाल ग़हरे समुद्र में हिचकोले खाता है। दूर से देखने पर लगता नही कि वह डूब रहा है! ऐसे तो कोई एकदम बदल नहीं जाता–अपना धर्म कोई नहीं छोड़ता। यह सब तो एकाएक नहीं हुआकृकृ कब–कब होता गया, पता भी न चला।

वह जो थीकृकृकृ एकदम खिली हुई धूप–सी उजली, हंसमुख, मिलनसार, मखमली हाथ, रंगीन चिड़िया–सी सदा चहचहाती–फुदकती– उड़ती, डाल–डाल पर बैठती, कोयल–सी गाती, हिरणी–सी मदमाती जिसकी चंदन गंध से आस–पास महक उठता, छांव–सी डोलती, गिलहरी–सी भागती, बदली–सी उमडती, लहर–सी उछलती!

मुझे हमेशा यह आभास होता रहा– अकेली होकर भी उसके अंदर एक भीड़ है। ऐसी भीड़ जो शोर मचाती, तूफ़ानी लहरों–सी बार–बार चट्टानों से टकराती है। उसके भीतर एक उफ़ान है–हाहाकार करता उद्याम उफ़ान समुद्र–सा
कृकृकृ पानी जोर से हरहराता हुआ आता और लौट जाता । फ़िर आताकृकृ ! बाहर से शांत दिखती हुई भी उसके अंदर एक लावा, जो फूटना चाहता है। मंथन उसके भीतर चलता है। यह मंथन उसे अपनों से है, अपने–आप से है।
क्या सुनामी के बाद जीवन नहीं होता ?क्यों नहीं, जीवन तो जीवन है, जीनेवाला चाहिए। क्या पता यह एक मष्षातष्ष्णा हो। यदि यह एक जुआ है तो भी वह युधिष्ठिर की तरह एक बार अवश्य खेलेगा, चाहे जीते चाहे हारे। तूफ़ान से पहले या तूफ़ान के बाद की शांति!

सच है कि यहां कुछ भी नही बीतता। अतीत बीत कर भी अनबीता ही रह जाता है। इतना सहज नहीं है अतीत को भुला देना!

बड़ी–बड़ी नशीली आंखें तरेरती बोली–'बड़े मीठे शैतान हुआ करते थे तुम ओर बड़ी मीठी थी तुम्हारी शैतानी। प्रतिवाद करते हुए मैंने कहा था– और कृकृ बड़ी ही छप्पनछुरी हुआ करती थी तुम।

तमिल भाषा में एक कहावत है–'शैतान से प्रेम हो जाये तो इमली के पेड़ पर चढ़ना पड़ता है'। इमली के पेड़ पर चढ़ना बहुत मुश्किल होता है। उसकी टहनियों और पत्तियों का जाल इतना घना होता है कि सांप जैसे जहरीले और रस्सीनुमा प्राणी को भी इसमें से रास्ते बनाने में तकलीफ होती है। इस वजह से मेरे जैसे पंक्षी के लिए अतिरिक्त सुरक्षा आप ही प्राप्त हो गई थी। अतः किले जैसे इस पेड़ को ही मैं सब कुछ मानने लगी तो इसमें आश्चर्य नहीं होना चाहिए। आंधी–तूफान से और किसी भी भूकंप–भूचाल से पूर्णतः सुरक्षित, एकांत और निरापद। आस–पास सन्नाटा दूर–दूर तक। शांत–प्रशांत वातावरण। लेकिन प्रकृति को एक स्त्री भला किस सीमा तक अपने में समाहित कर सकती है?मैं चाहती थी तुम्हारे सिवा कोई मेरे सामने न पड़े। भीतर से भड़ी हुई मैं बस अपने–आप में ही रहना चाही थी।

बोलती गयी–सुबह के कोई रिश्ते प्रतीक्षा से नहीं होते। इसलिए सांझ के समय सूरज के साथ ही अस्ताचल में समा जाती। तुम मुझे उस अबोध शिशु की तरह दिखते जिसके मुख पर हमेशा दही–माखन लिपटा रहता हो। माखन चोर कहीं के! जहां माखन दिखा कि मुंह लगा दिया। तुम्हारी मीठी महकी बहकी चिकनी–चुपड़ी बातें–'तुम तो अपने–आप में ही स्वर्ग की छटा हो, प्रेम की संपूर्ण कविता हो और मैं तुम्हारे इस प्रेम के महासागर में जैसे ग़हरे डूब कर कहीं खो ही जाती थी। बावजूद सादगी, आत्मसंयम और त्याग–यही तो तुम थे। एकदम–से नेचुरल। जरा भी आर्टिफिशियल नहीं। न

व्यक्तित्व में, न आचरण में, न कर्म में, न व्यवहार में। पूरे समर्पित व्यक्तित्व के मालिक। मैं बार–बार खाली होकर तुम्हारा प्यार पाते रहने की आकांक्षा से भर–भर जाती हुई।

तुम कहा करते– 'प्रेमी और प्रेमिका के बीच कोई परदादारी ही नहीं होनी चाहिए। यदि कोई दर्पण की स्थिति के बारे में ही सोचता रहा तो उसके लिए छवि को देख पाना संभव नहीं होगा और जो छवि पर निग़ाहें टिका देता है वह पायेगा कि दर्पण बीच से गायब हो गया है। प्रेम का विज्ञान और मनोविज्ञान तथा कला किसी भी किताब में नहीं मिलती। अपनी पहचान को स्वार्थ–सिद्धि का माध्यम नहीं बना सकी।'

तुम कहा करते थे–'जहां हम होते हैं, उसी स्थान में स्वधर्म का पालन–आचरण करना पड़ता है। हियर एण्ड नाऊ। यहीं और इसी क्षण। इसी को सबसे बड़ी आध्यात्मिक वर्षत्ति माननी चाहिए कि टू बी हियर एण्ड नाऊ–हम जहां भी हैं और जिस क्षण हैं, वहां के व्यक्ति, समाज, प्राणी, वनस्पति–सर्षष्टि यह हमारा स्वदेश है और वहां हमारा जो कर्तव्य है, वही हमारा स्वधर्म है। हमारी दिक्कत यह है कि जहां हम हैं, वहां नहीं होते। स्वधर्म रूप कर्म करते हुए जो स्व हमारे सामने व्यक्त होता है, वही हमारी शिक्षा है।'

आज सोचती हूं समय कितनी बेदर्दी से हमसे हमारी सबसे करीबी चीज़ें भी छुड़वा देता है। खुशी, शायद हमारे भीतर सो गये आत्मविश्वास का काम करती है। उम्र के इस मोड़ पर अकेली मैं सोच रही हूं–'क्या मोबाईल पर आ रही आवाज़ में भी बोलने की गंध रहती है?तो क्या यह प्रेम के अंत की शुरूआत है?और क्या दुखते हुए सुख की मिठास है?'

'अब कैसे और कब बताओगे तुम ?' ·

कविता

मेरी कविता

उमेश पंडित उत्पल
चुनापुर रोड मधुबनी
पूर्णियाँ, मो. 9931926872

मेरी कविता
सुबह की वेला में
कोयल की मीठी बोली सुनती
चिड़ियों की चहक सुनती
सूरज की लालिमा देखती
सुनहरी किरणों में
अपने चेहरा का प्रतिबिम्ब देखती
तृणों पर बिखरे ओस–कणों को निहारती
ग्राम्य बालाओं को मटका लिये
पनघट की ओर जाती देखती
हल–बैल ढूँढती
किसानों के चेहरे की मुस्कान देखती
कंधे पर खाद–बीज का बोरा देखती
खेतिहर मजदूर के कुदाल की चाल देखती
भैंसों के पीठ पर लेटे बाल–गोपाल देखती
मेरी कविता
दोपहर की वेला में
नीम, ताड़, बेर, बबूल की छाँह ढूँढ़ती
माथे पर कलेवा हाथ में पानी भरा बाल्टी
लिए गंगुआ गिरधारी गाय की राह देखती
पसीना पोंछते मक्का बाजरा की रोटी पर
आम का आचार देखती
रोटी खाते वक्त अच्छे पैदावार की उम्मीद करती
सुस्ताते बैलों की पीठ थपथपाती
शाम के लिए आटा नोन–तेल की टोह ले
कृतज्ञ नयनों से घरवाली को विदा करती
मेरी कविता
मवेशियों के पाद–चाप सुनती
जलावन की गठरी को रखती
अंधेरे में मिट्टी का तेल ढूँढती
आस–पड़ोस के घर का कुआँ देखती
गोयठा या टूटे खपड़ा पर
माँगकर आग लाती
फूँक–फूँककर चूल्हा जलाती, दीया जलाती
दूध दुहकर धरती पर गिराती
पुलकित हो बच्चों को पिलाती
गरम–गरम रोटी खिलाती
सुबह से शाम तक का काम गिनाती
फल–अफल शुभ–अशुभ की गिनती कर
आपस में सुख–दुख बतियाती
मेरी कविता
सुबह वेला में
दोपहर वेला में
शाम वेला में।

परख

प्रसाद की राष्ट्रीय चेतना

कथा साहित्य के संदर्भ में

डॉ. हरीदास व्यास,
जोधपुर, राजस्थान, 9414295356

हमारे यहाँ बहुधा राष्ट्रीय चेतना और स्वतंत्रता आंदोलन को एक–दूसरे के पर्याय के रूप में प्रयुक्त किया जाता रहा है। यह भूल खास तौर पर आजादी पूर्व की स्थितियों का आकलन करते हुए हुई है।

राष्ट्रीयता के दो प्रमुख आयाम माने गये हैं–राष्ट्रीय भावना और राष्ट्रीय चेतना। राष्ट्रीय भावना चूँकि 'भावना प्रधान होती है, अतः प्रायः उत्साहपूर्ण होती है, जबकि राष्ट्रीय चेतना भविष्योन्मुखी व विवेकसम्मत होने के कारण चयन की चेतना से परिपूर्ण होती है।

1947 से पूर्व हमारे देश में राष्ट्रीयता के ये दोनों आयाम विद्यमान हैं। राष्ट्रीय भावना मुक्ति की प्रक्रिया को गति दे रही थी और राष्ट्रीय चेतना निर्माण की प्रक्रिया को व्यापक बना रही थी। यहाँ यह तथ्य भी स्पष्ट है कि मुक्ति की प्रक्रिया का आधार राष्ट्रीय भावना स्वतंत्रता प्राप्ति तक प्रधान होती है, जबकि राष्ट्रीय चेतना की प्रक्रिया उसके उपरांत भी निरंतर रहनेवाली दूरगामी प्रक्रिया होती है। व्यवहार के स्तर पर राष्ट्रीय चेतना का विकास तीन प्रकार से होता है–अंधराष्ट्रीयता, खंडित राष्ट्रीयता और प्रगतिशील राष्ट्रीयता।

''अंधराष्ट्रीयता की चेतना किसी भी राष्ट्र को या तो साम्राज्यवाद की ओर ले जाती है अथवा तानाशाही की ओर। खंडित राष्ट्रीयता व्यवसायवाद को जन्म देती है, पूंजीवाद को पैदा करती है; लेकिन प्रगतिशील राष्ट्रीयता सच्चे जनतंत्र या समाजवाद का सृजन करती है।'' (साहित्य सर्जना और जनाकांक्षाएँ डॉ. विमल) हम इसी प्रगतिशील राष्ट्रीय चेतना को संदर्भित एवं विवेचित करेंगे।

एक लेखक राष्ट्रीय चेतना को इस अनवरत धारा के अंतर्गत सामयिक समस्याओं अथवा परिस्थितियों के आधार पर नये निर्माण, भविष्य के लिए अपेक्षित निर्माण की प्रक्रिया को एक आकार देता रहता है, जब मुक्ति की प्रक्रिया अधिक व्यापक तौर पर क्रियाशील हो उस समय निर्माण की प्रक्रिया एक बहुत धैर्यपूर्ण, वर्तमान के कोलाहल के बीच भविष्य को आहट को सुनने–समझने के एक दुष्कर कार्य के समान हाती है, स्वामी दयानन्द सरस्वती, स्वामी विवेकानंद जैसे महर्षियों ने उस मुक्ति की भावना के दौर में भी भविष्य की आकांक्षाओं को पहचानते हुए व मुक्ति भावना को सशक्त आधार देते हुए भी राष्ट्रीय निर्माण की प्रक्रिया को व्यापक बनाया।

स्वामी विवेकानंद ने इस जन्म में भूखों मारनेवाले, मरणोपरांत स्वर्ग देनेवाले धर्म को ठुकरा दिया और इस देश में समाजवाद की आवश्यकता का आह्वान उस समय किया, जब रूस की क्रान्ति का अभी प्रारंभ ही नहीं हुआ था।

क्रांतिकारी भगत सिंह ने भी राष्ट्रीय मुक्ति के प्रयासों के साथ–साथ राष्ट्रीय चेतना को अपने लेखों द्वारा स्पष्ट किया है, विकसित किया है। इस दौर के प्रेमचंद, निराला और प्रसाद ने राष्ट्रीय चेतना को अपने साहित्य का प्रमुख स्वर बनाया है। प्रेमचंद ने यथार्थवाद के माध्यम से और प्रसाद ने आदर्शवाद को आधार बनाकर राष्ट्रीय चेतना के स्वर को मुखरित किया है। प्रसाद साहित्य के निष्कर्ष भले ही प्रायः आदर्शवादी रहे हों, पर निर्माण प्रक्रिया में उन्होंने समसामयिक परिस्थितियों को ध्यान में रखा है। प्रसाद ने सामयिक परिस्थितियों की संभावनाओं को अपनी लेखकीय भविष्योन्मुख दृष्टि क्षमता से देखा है।

इस संदर्भ में प्रसाद के सामने मूलतः दो लक्ष्य थे–परंपराओं और धर्म की अवधारणाओं पर पुनर्विचार तथा सभी प्राणियों को समान महत्व वाले समाज की संरचना।

धर्म को मानव धर्म का रूप देने की आकांक्षा रखते हुए प्रसाद धर्म के बाद तत्वों को निकाल फेंकने के लिए प्रेरित करते हैं। इस संदर्भ में महत्वपूर्ण प्रश्न करते हैं–'क्या जिस धर्म में दया नहीं है, उसे भी तुम धर्म कहोगे?' (चक्रवर्ती का स्तंभ, प्रसाद पृ.65)

वस्तुतः धर्म के खंडित स्वरूप को प्रसाद ने राष्ट्रीय निर्माण की प्रक्रिया में बहुत बड़ी बाधा माना था। हमारी शक्तियों का ह्रास, शक्तियों की अनुपयोगिताओं का प्रमुख कारण हमारी कठमुल्ला धार्मिक भावनाएँ थीं–''हमारी धार्मिक भावनाएँ बँटी हुई हैं, फलतः हमारा सामाजिक जीवन दंभ, राजनीतिक क्षेत्र कलह और स्वार्थ से जकड़ा हुआ है। शक्तियाँ हैं, पर उसका कोई केन्द्र नहीं।'' (दासी–जयशंकर प्रसाद, पृ. 5)

मानव धर्म की दिशा में प्रसाद की कथाओं के सहज प्रयास बहुत प्रभावशाली बन पड़े हैं। उनकी रचनाओं में संकीर्ण संप्रदायवाद का विरोध महत्वपूर्ण है। इसीलिए जब 'कंकाल' उपन्यास का विजय नवपरिणिता 'गाला' से पूछता है कि तुम मुगलानी माँ से उत्पन्न हुई, तो गाला क्रोधपूर्ण स्वर में प्राप्त प्रश्न करती है–''तुम यह क्यों नहीं कहते कि हम मनुष्य हैं।''

इसी दृष्टि के कारण ही प्रसाद की कई रचनाओं में हिन्दू, मुस्लिम और अंग्रेज पात्र परस्पर प्रेम और सद्भावपूर्ण व्यवहार करते हैं। दासी, सलीम, स्वर्ग के खंडहर आदि कहानियों में हिन्दू–मुस्लिम पात्र अपने सामाजिक जीवन में परस्पर अन्योन्याश्रित हैं–शरणागत में अंग्रेज दम्पति की विपरीत परिस्थितियों में एक भारतीय परिवार रक्षा करता है। शान्ति स्थापित होने के बाद जब अंग्रेज पत्नी उस परिवार के घर से निकलती है, तो वह उदात्तपूर्ण हिन्दू संस्कारों के रंग से रंगी होती है। इस प्रकार प्रसाद के कथापात्रों में दूसरे संप्रदाय का व्यक्तित्व होना परस्पर विरोधी अथवा दुश्मनी का कारण नहीं है। वहाँ मनुष्य का नहीं, अमानवीयता और कुकृत्य का विरोध है।

यह प्रसाद की यथार्थ चेतना ही थी जो कहीं न कहीं विवेकानंद के मत के समान ही अभिव्यक्त होती है–''इस पृथ्वी को स्वर्ग की आवश्यकता क्या है शेख?.... इस पृथ्वी को स्वर्ग के ठेकेदारों से बचाना होगा। पृथ्वी का गौरव स्वर्ग बन जाने से नष्ट हो जाएगा।.... अपनी आकांक्षाओं के काल्पनिक स्वर्ग के लिए, क्षुद्र स्वार्थ के लिए इस महती को, इस धरणी को नर्क न बनाओ। देवता बनने के प्रलोभन में पड़कर मनुष्य राक्षस न बन जाए शेख।'' स्वर्ग के खंडहर, जयशंकर प्रसाद, पृ. 46)

प्रसाद धर्म के नये स्वरूप की संरचना समाजोन्मुखी रूपी करना चाहते हैं। 'कंकाल' के निरंजन स्वामी का चरित्र पतन धर्म के आवरण में हुआ, पर वही निरंजन अंततः स्वामी कृष्णशरण के नवसमाज निर्माण की प्रक्रिया में मुक्ति ढूँढ़ता है।

वस्तुतः 'कंकाल' तद्युगीन समाज का कंकाल है, उन रूढ़ मान्यताओं और आडंबरों का कंकाल है,जो राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया में बाधा स्वरूप है। प्रसादजी ने इस कंकाल की भयावहता को उकेरते हुए उसके

समानांतर नवनिर्माण की पगडंडी बनाई है। इसी पगडंडी पर चलकर किशोरी, यमुना, चाची, निरंजन और घंटी जैसे पात्र नवनिर्माण की प्रक्रिया से जुड़ते हुए मुक्ति का अनुभव करते हैं।

प्रसाद की नवसमाज निर्माण की पक्षधरता उनकी वह प्रखर राष्ट्रीय चेतना है, जो वर्तमान के साथ–साथ भविष्य की अपेक्षाओं को भी भली भाँति जानती है। इन्हीं अपेक्षाओं में उन्होंने स्त्री स्वातंत्र्य और समाज में उसकी महत्ता को स्थापित करने को सर्वोच्च स्थान दिया। समूचे प्रसाद साहित्य में नीर एक नव ओजस्व रूप में सामने आती है। अपने समय की परिस्थितियों में कड़ा संघर्ष करनेवाली नारी समाज की निर्णायक शक्ति के रूप में स्थापित हुई है। 'तितली' जैसी नारीपात्र प्रसाद की इन भावनाओं को साकार रूप देती है, वह संघर्ष अकेली 'तितली' का नहीं, संपूर्ण नारी समाज का संघर्ष है।

जिस तरह 'तितली' इंद्रदेव की दया को ठुकराती है, उसी तरह 'कंकाल' को यमुना भी ऐसी दया की उपेक्षा करती हुई कहती है–''जब मैं स्त्रियों के ऊपर दया दिखाने का उत्साह पुरुषों में देखती हूँ तो जैसे कट जाती हूँ, ऐसा जान पड़ता है कि वह सब कोलाहल स्त्री की लज्जा की मेघमाला है, उनकी असहाय परिस्थिति का व्यंग्य उपहास है।''(कंकाल, पृ. 186)

यमुना का वह विद्रोह मानो 'तितली' स्पष्ट करते हुए कहती है–''स्त्रियों को उनकी आर्थिक पराधीनता के कारण जब हम स्नेह करने के लिए बाध्य करते हैं, तब उनके मन में विद्रोह की सृष्टि भी स्वाभाविक है।'' (तितली, पृ. 144)

प्रसाद की नारियों का यह विद्रोह अनायास नहीं है और केवल तात्काकालिक कारणों पर आधारित भी नहीं है, यह विद्रोह पुरुष प्रवृत्ति और मानसिकता के प्रति विद्रोह है। घंटी इस तथ्य को सुविचारित करने के बाद कहती है–''स्त्रियों को स्वयं घर–घर जाकर बहनों की सेवा करनी चाहिए, पुरुष उन्हें उतनी ही शिक्षा और ज्ञान देना चाहते हैं, जितना उनके स्वार्थ में बाधक न हो, घरों के भीतर अंधकार है। धर्म के नाम पर ढोंग की पूजा है और शील तथा आचार के नाम पर रूढ़ियों की।''(कंकाल, पृ. 188–189)

यह नारी चेतना नारी स्वातंत्र्य को रचनात्मक स्वरूप देने की दिशा में अग्रसर है, नारी स्वाभिमान, शक्ति एवं समाज में उसकी पुरुषों के समान महत्ता हेतु जोर देते हुए कहा गया है–''किसी को शबरी के सदृश अछूत न समझो। किसी को अहिल्या सदृश पापिन मत कहो, किसी को लघु न समझो। (कंकाल, पृ. 190) निरंजन की यह अभिव्यक्ति नारी समाज से इतर भी संकेत करती है।

राष्ट्र के नवनिर्माण हेतु समता और समरसता को प्रसाद ने अपने कथा–साहित्य काप्रमुख लक्ष्य बनाया है। सामंतवादी मूल्यों का विरोध एवं मानववादी मूल्यों के विकास के माध्यम से प्रसाद समता व समरसता को व्यापक फलक देते हैं। इसकी व्यापकता हेतु वे जनचेतना को प्राथमिक अनिवार्यता के रूप में प्रतिष्ठित करते हैं। इस वैचारिक स्वरूप को साकार करने के लिए प्रसाद अनुभव करते हैं–इस वैचारिक स्वरूप को साकार करने के लिए प्रसाद अनुभव करते हैं–"पढ़े–लिखे सम्पन्न लोगों को नागरिकता के प्रलोभनों को छोड़कर देश के गाँवों में बिखर जाना चाहिए।....विश्वास, प्रकाश और आनंद का प्रचार करना चाहिए।''(तितली, पृ. 195)

राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया में प्रसाद संपूर्ण समाज को साथ लेकर चलने की अनिवार्यता पर बल देते हुए समाज के उस वर्ग को, उन पात्रों को न केवल सहानुभूति बल्कि सम्मान देते हैं, जिन्हें इतिहास में प्रायः घृणित एवं उपेक्षित स्थान मिला था। 'मधुआ' की गरीबी समाज के लिए न उपयोगी थी, न ही सम्मानित। परन्तु उसकी मानवीयता को, उसकी संभावनापूर्ण क्षमताओं को प्रसाद प्रतिष्ठित करते हैं। इसी तरह 'गुण्डा' नन्हकू सिंह एक कठोर, हृदयहीन और समाज में आतंक उत्पन्न करनेवाला पात्र मानव जीवन के रक्षार्थ, मानव स्वातंत्र्य के रक्षार्थ अपने जीवन का उत्सर्ग कर समाज में अपने जैसे असंख्य व्यक्तियों की महत्ता को स्पष्ट कर जाता है।

प्रसाद छायावाद के रचनाकार हैं। उस युग का छायावाद का महत्त्वपूर्ण लक्ष्य था—मनुष्य का मनुष्य से जुड़ाव–लगाव। परिणामस्वरूप समाज के प्रत्येक वर्ग का प्रत्येक मनुष्य राष्ट्रीय धारा का अनिवार्य एवं विभाज्य अंग बनता है। 'आकाशदीप' कहानी भी इसी राष्ट्रीय धारा को और व्यापक बनाती है। 'आकाशदीप' केवल प्रेम–स्मारक नहीं, वह उन सुदूर श्लोकों में बसे, उपेक्षित वासियों के लिए एक भविष्य की सह संभावना है, परस्पर संगठन का हेतु है। उसके नीचे वे एकत्र होकर संगठन शक्ति को पहचान सके, उसका आधार है यह 'आकाशदीप'।

प्रसाद की नवनिर्माण सृष्टि व्यष्टि से समष्टि की ओर गतिमान है, 'व्रतभंग' का कपिंजल स्वमोक्ष के लिए साधनारत है। दूसरी ओर राजपुत्र नंदन राजपथ से जनपथ की ओर अग्रसर है। वह कपिंजल को भी एकांत साधना में समाज साधना की ओर उन्मुख करता है। इसी प्रकार 'पुरस्कार' की मधुलिका राष्ट्र रक्षार्थ अरुण के प्रति अपने प्रेम को गौण मानती हुई राष्ट्र विरोधी अरुण को बंदी बनवा देती है।

प्रसाद की राष्ट्रीय चेतना की प्रखरता का अनुमान उनकी भविष्योन्मुखी दृष्टि से लगाया जा सकता है। 'तितली' प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम का क्रियान्वयन उस समय करती है, जब देश में ऐसा कोई व्यापक राजनीतिक एवं सामाजिक कार्यक्रम तो दूर की बात परिकल्पना तक नहीं थी। 'कंकाल' की 'गाला' स्त्रियों की शिक्षा हेतु स्कूल खोलती है, तो 'तितली' नारी शिक्षा के साथ–साथ प्रौढ़ शिक्षा हेतु रात्रिकालीन पाठशालाएँ भी खोलती हैं। इसमें कथाओं के माध्यम से किसानों को शिक्षित किया जाता है। यह ध्यातव्य है कि 'तितली' का उद्देश्य साक्षरता मात्र नहीं, उसका लक्ष्य शिक्षा है। शिक्षा के माध्यम से नव चेतना, नव संस्कार है।

इसी प्रकार प्रसाद ने किसान आंदोलन का एक व्यवस्थित व वैज्ञानिक स्वरूप उस समय दिया था, जब देश में किसान आंदोलन जैसा कोई संगठन या स्वरूप ही नहीं था। जमींदारों, उसके मातहतों द्वारा किये जा रहे अत्याचारों के कारण अपनी जमीनों से बेदखल होते, लगान के बोझ से टूटते किसानों के सामने 'तितली' अपने सुनियोजित कर्म के आधार पर एक आदर्श प्रस्तुत करती है। वहीं शैला अपने सहयोगी स्मिथ के साथ मिलकर एक ही किसान के दूरदराज स्थित जमीन के छोटे छोटे टुकड़े के स्थान पर जमीन की अदला–बदली के माध्यम से प्रत्येक किसान को एक ही स्थान पर पूरी जमीन उपलब्ध करवाने का प्रयास करती है, ताकि किसान की ऊर्जा का अपव्यय न हो तथा उत्पादन में वृद्धि हो।

छायावाद के गाँधीवाद का साहित्यिक संस्करण भी कहा गया है। प्रेमचंद के 'गोदान' और 'होरी' जब तमाम अत्याचारों– शोषणों को झेलते हुए भी कोई विद्रोह नहीं करता तो उक्त कथन की विश्वसनीयता बढ़ जाती है। गाँधी की राष्ट्रीय चेतना के कारण उस समय राष्ट्रीय निर्माण की क्रिया गांधी दर्शन के अनुरूप थी गांधीजी के राजनीतिक उत्कर्ष काल में ही गांधी विचारधारा के प्रति विद्रोह का एक स्वर भी मुखर हुआ था। प्रसाद की 1936 में लिखी 'कामायनी' के पश्चात् 'इरावती' जैसे ऐतिहासिक उपन्यास में यह मुखर स्वर अभिव्यक्त हुआ है। 'इरावती' का धार्मिक पात्र ब्रह्मचारी अपने चिंतन का निष्कर्ष देते हुए कहता है–''सर्वसाधरण में अहिंसा, अनात्म और अनित्यता के नाम पर जो कायरता, विश्वास का अभाव और निराशा का प्रचार हो रहा है, उसके स्थान पर उत्साह, साहस और आत्मविश्वास की प्रतिष्ठा करनी होगी।'' (इरावती, पृ. 19) प्रसाद की यह दृष्टि निश्चित रूप से

सामयिक परिस्थितियों का समाधान मात्र नहीं थी, बल्कि आनेवाले समय की अनिवार्यता का भी अनुमान है।

प्रसाद की राष्ट्रीय चेतना की यह प्रखरता ही थी कि उस काल में ही उन्होंने स्वतंत्र भारत के भावी निर्माण हेतु नारी स्वातंत्र्य, शिक्षा, धर्म व परंपराओं की अवधारणाओं पर पुनर्विचार, किसान संगठन, प्रौढ़ शिक्षा, समाज को उपेक्षित जनशक्ति के सदुपयोग, समता एवं समरसता जैसे तत्वों को रचनात्मक स्वरूप में भविष्योन्मुख एवं विकसित कर दिया था। उसके परवर्ती रचनाकारों में रेणु, नागार्जुन और भैरव प्रसाद जैसे सशक्त रचनाकारों की रचनाओं में भी नारी समाज, शिक्षा–धर्म एवं स्वातंत्र्य का प्रसाद द्वारा प्रदत्त दिशा में ही विकास मिलता है। वही दिशा, वही स्वरूप स्वतंत्र भारत में अंततः राजनीतिक एवं सामाजिक स्तर पर देखा जा सकता है। प्रसाद की राष्ट्रीय चेतना की यही सबसे बड़ी सफलता कही जा सकती है।

थोड़ा सा अपनापन

कल्पना मिश्रा बाजपेई
औरेया इटवा

मैं सोचती हूँ जब कभी
कि.....
जब तू रात को मेरी गोदी में
दुबक कर चैन की नींद
सो जाता है.....
तब मुझे मैं आंशिक रूप से
गोदी में उठाकर
कश्मीर से कन्याकुमारी तक
हर मंदिर में करवाती हूँ दर्शन
और माँगती रहती हूँ तेरे उन्नत
भविष्य की मन्नत
जब तू सोता है दुबक कर
मेरी गोदी में रात को...
आ जाओ अब बैठो मेरे पास
देख लूँ तुझे जीभर जिससे मैं
जी सकूँ चैन से उम्रभर
क्योंकि मुझे मालूम है कि
संसार की आपा–धापी से तू भी
अछूता नहीं बचेगा
तू स्वस्थ रहे और व्यस्त भी रहे
इन सबके बीच में भी
मैं तलाश लूँगी अपने सकून को
बस डर तो इस बात का है कि
तू कहीं पराया न हो जाए
बच्चों का परायापन ही तो
सालता रहता है नासूर की तरह
बूढ़े माँ बाप के कलेजे को
आखिर उन्हें क्या चाहिए
धन–दौलत नहीं, तो बिल्कुल नहीं
बस थोड़े से अपनेपन की
उम्मीद करते हैं माता–पिता अपनी
औलाद से और ज्यादा कुछ नहीं
क्या तू मुझे.....?

ग़ज़ल

डॉ. मनाजिर आशिक हरगानवी
कोहसार, भीखरपुर, भागलपुर
9430966158

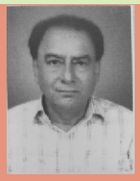

कहते हैं ये भी हमारी आन में
आन में खुश हैं ख़फ़ा हैं आन में
पहले मुझको देख ले, फिर बाद में
कह दे जो आये तेरे ईमान मे
अच्छी सूरत पर मचल ही जाएगा
क्या बुरी हठ है दिले–नादान में
शर्म की है बात सुन पायें न ग़ैर
आगे आओ तो कहूँ कुछ कान में
देखते हैं आईना वह, हम उन्हें
दोनों खुश हैं अपने अपने ध्यान में
गर न हो सूरत तो सीरत ही सही
कुछ तो होना चाहिए इंसान में
हो गये 'आशिक़' वह इक इलज़ाम पर
मुझको दुनिया मिल गई बोहतान मे

(2)
धीमे सुर में रिमझिम–रिमझिम मीठा–मीठा शो
सतरंगी किरणों का झूला, झूला झूलें मोर
पर्वत–पर्वत भरें कुलेलें झरने मस्त मलंग
चंचल शोख़ हवा चरवाही बादल डंगर ढोर
अपने पूरे यौवन पर है मौसम का दरिया
बोझ ज़मीनों पर बरसेगी आज घटा घंघोर
शाम ढले तक रहेगी यूं ही रोशनियों का राज
शाम गये से रात ढले तक घोर अंधेरा घोर
ख्वाब में शायद देखे थे सब हँसते बसते लोग
आँख खुली तो पाया 'आशिक' जग बेदर्द कठोर।

जरूरत

डॉ. पंकज साहा
राजमहल, साहेबगंज

कर्म की चढ़ाई पार कर
अवकाश की ढलान
उतरते हुए
खड़खड़ साइकिल पर
थरथर देह
अवकाश है
पर आराम नहीं
अलसुबह लाना है दूध
पोते को स्कूल छोड़
लौटते हुए सब्जी
दोपहर एक चालीस में
छुट्टी होती है पोते की
इकलौता है पोता
आँखों का तारा
शाम में ट्यूशन
ले जाना
लाना
रिक्शा, गाड़ी का रेट
बेरहम
फिर नागा का सितम
विश्वास नहीं नौकर पर
बेटा सुबह निकल पड़ता है
काम पर
दोपहिये से स्टेशन
ट्रेन से महानगर
बहू भी काम पर जाती है
दूर एक कसबे में
समय नहीं उनके पास
अपने बेटे से
स्नेह का नाता जोड़े
और फिर
बुड्ढा घर बैठे
रोटी क्यों तोड़े
कंक्रीट के जंगल में
उत्तराधुनिक मुखौटा
और चंचल पैसों की
पोशाक पहनकर जहाँ
आदमी बेमुरव्वत है
वहाँ ऐसे बूढ़ों की
बहुत जरूरत है।

समीक्षा

रागदरबारी का राग-विराग
:श्रीलाल शुक्ल

भगवती प्रसाद द्विवेदी
पटना
9430600958

श्रीलाल शुक्ल का दैहिक अवसान व्यंग्य विधा के गौरव स्तम्भ का धराशायी हो जाना है। यों तो श्रीलाल शुक्लजी ने बाल उपन्यास 'गब्बर सिंह' और 'उसके साथी' समेत कुल दस उपन्यास लिखे, मगर 1968 में प्रकाशित 'राग–दरबारी' ने व्यंग्य उपन्यास के हलके में जो 'भूतो न भविष्यति' इतिहास रचा था, वह विलक्षण था। प्रकाशन के महज दो वर्ष बाद ही साहित्य अकादमी पुरस्कार और चार दशक गुजर जाने के पश्चात् भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार की प्राप्ति कृति के कालजयी होने का उनका पुख्ता प्रमाण है। प्रेमचंद को 'गोदान' के बाद 'रागदरबारी' ही ऐसा क्लासिक उपन्यास था, जिसने सोच व संवेदना के स्तर पर गंवई समाज की विसंगतियों– विद्रूपताओं को गहरे उद्घाटित करने में कामयाबी हासिल की थी। लोकप्रियता का आलम यह था कि देश की शायद ही कोई भाषा होगी, जिसमें अनूदित होकर यह उपन्यास समादृत न हुआ हो।

जिन दिनों 'रागदरबारी' का प्रकाशन हुआ था, उस वक्त बहस का मुद्दा यह था कि व्यंग्य को शैली माना जाये अथवा विधा?पक्ष और विपक्ष के अपने–अपने तर्क थे। व्यंग्य के महारथी कथा, निबंध व कविता के जरिए चर्चा के केन्द्र में रहे थे। हरिशंकर परसाई जहाँ कथ्य की नवीनता तथा सामाजिक सरोकार की वजह से पैनी व्यंग्य कथाओं की मार्फत चर्चा के केन्द्र में रहे, वहीं शरद जोशी व रवीन्द्र त्यागी आदि ने निबंधों के माध्यम से शिखरों का स्पर्श किया। रघुवीर सहाय ने समाजवादी चिंतनधारा को कविताओं में व्यंग्य उड़ेलकर प्रवाहित किया। मगर श्रीलाल शुक्ल ने औपन्यासिक कृति के जरिए व्यंग्य की सामर्थ्य एवं जबर्दस्त ताकत का अहसास कराते हुए स्पष्ट रूप से संकेत दिया कि इसे सिर्फ शैली, लहजा या टोन कहकर आप खारिज नहीं कर सकते।

'रागदरबारी' के उपन्यासकार ने एक ऐसे प्रांजल,प्रवहमान गद्य की रचना कर डाली थी, जो खिलंदड़ेपन के साथ ही चोट और कचोट से पूरी तरह लैस था तथा जिसके अंदाजे बयाँ ने पाठकों को चमत्कृत कर दिया था। इस संदर्भ में सुशील सिद्धार्थ की ये पंक्तियाँ गौरतलब हैं–

जो उन्होंने लिखा, उसने हिन्दी के रचनात्मक गद्य को दो युगों में बाँट दिया—1. श्रीलाल शुक्ल से पहले का हिन्दी गद्य और 2. श्रीलाल शुक्ल के बाद का हिन्दी गद्य। उनके बाद के लेखकों में जाने कितनों पर उनकी छाप है। अष्टछाप नहीं, स्पष्ट छाप। फिर भी कहते हैं कि मालिक का है अंदाजे बयाँ और ऐसा महान रचनाकार, जिसपर हिन्दी को गर्व है।

हालाँकि हरिशंकर परसाई का उपन्यास 'रानी नागफनी की कहानी' 1961 में ही प्रकाशित हो चुका था, पर जो बात 'राग दरबारी' में थी, वह अन्यत्र कहाँ! बाँकपन उसका स्थायी भाव था और कथानक की बारीक पड़ताल कर बुना गया ताना–बाना हो अथवा पात्रों के चयन व चरित्र–चित्रण की खूबियाँ–हर जगह वही बाँकपन दृष्टिगत होता है। डॉ. नामवर सिंह ने भी उपन्यास की कामयाबी में उसकी वक्र और बाँकी भाषा को खास तौर से रेखांकित किया है। ग्रामीण भारत का संपूर्ण सामाजिक परिदृश्य अपनी खूबियों और खामियों के साथ उक्त उपन्यास में सजीव हो उठा था, जिसका विस्तार हास–परिहास से मर्मस्पर्शी करुणा तक हुआ था। एक साथ हँसाने और रुलाने की क्षमता उसकी सबसे बड़ी खासियत थी।

'रागदरबारी' के प्रकाश में आने के पूर्व श्रीलाल जी की परिचित्रि तक व्यंग्यकार के रूप में बन चुकी थी; क्योंकि उनके दो व्यंग्य संग्रह 'अंगद का पाँव' और 'यहाँ से वहाँ' छप चुके थे, साथ ही दो उपन्यास 'सूनी घाटी का सूरज' तथा 'अज्ञातवास' का भी प्रकाशन हो चुका था। बाद की कृतियों में प्रमुख हैं—'सीमाएँ टूटती हैं', 'आदमी का जहर', 'मकान', 'पहला पड़ाव', 'विश्रामपुर का संत', 'रागविराग' आदि। पर 'राग, रसोइया, पागरी कभी–कभी बन जाय' की मानिन्द 'रागदरबारी' में रचनाकार की तमाम सर्जनात्मक खूबियाँ एक साथ मौजूद हैं। एक–एक चरित्र को उपन्यासकार ने बारीकी से गढ़ा है। तभी तो वह समाज के हर तबके का जीवंत व विश्वसनीय प्रतिनिधित्व करता है। नतीजतन पूरा उपन्यास उस वक्त के ही नहीं, बल्कि आज के ग्रामीण समाज का भी आईना नजर आता है।

'राग दरबारी' में गँवई जीवन की जीवटता और अनवरत संघर्षशीलता की दास्तान तो है ही, टुच्चे किस्म की चालबाजियाँ, क्षुद्रताएँ एवं धूर्तताएँ भी हैं और सबसे बड़ी बात है–छोटी–छोटी खुशियों में भी सुख की तलाश। व्यंग्य लेखन को वस्तुतः एक सुशिक्षित मस्तिष्क की देन' माननेवाले श्रीलाल शुक्ल जी की स्वीकारोक्ति है–''अगर 'रागदरबारी' परिहासात्मक अवज्ञा, व्यंग्य या हाई कॉमेडी के मूड में लिखा गया है, तो यह बात गाँवों के उस मूड से मेल खाती है, जहाँ विपत्तियों और संघर्षों के बावजूद लोग हर छोटी–छोटी बातों से अपने को खुश रखने की कोशिश करते हैं। गाँव का आदमी अगर सफेद कॉलरवाले शहरी की तरह आत्मदया और कुंठा का शिकार हो जाए और उसे अपने व्यवहारों में भी दिखाने लगे तो जीवित रहना उसके लिए दुष्कर हो जाएगा और गाँव सामूहिक आत्महंताओं के केन्द्र हो जाएँगे। विपत्तियाँ और संघर्षों को झेलने के में नियतिवादी ही उनका एकमात्र शास्त्र नहीं है, जीवन के प्रति उनमें एक खुली हुई दृष्टि भी है, जो उतने ही कारगर एक दूसरे अस्त्र की सृष्टि करती है, जिसका नाम परिहासबोध है।''

'रागदरबारी' सर्जना शुक्लजी ने सरकारी सेवा में रहकर की थी। यही वजह है कि अफसरशाही और लालफीताशाही की गहरी पड़ताल कर उसपर जमकर चोट की गयी है। मगर पुस्तक प्रकाशन के पूर्व जब उपन्यासकार ने सरकार से अनुमति लेनी चाही, तो उसे कैसे–कैसे पापड़ बेलने पड़े थे, उसकी अंतर्कथा का बयान करते हुए खुद रचनाकार ने लिखा है–जिस नौकरशाही पर मैंने 'रागदरबारी में इतनी प्रतिभा बरबाद की है, वही नौकरशाही के प्रकाशन के पहले 'रागदरबारी' को ही बरबाद करने पर तुल गई। मेरी हैसियत एक सत्रह साल पुराने सरकारी नौकरी की थी और अचानक सरकार ने 'रागदरबारी' की पांडुलिपि मँगाकर देखना चाहा। मैंने भी सोचा, जो होना हो, पहले ही हो ले। पर हुआ यह कि कुछ भी नहीं हुआ। यानी सरकार पांडुलिपि लेकर चुपचाप बैठ गयी। मैं 'रागदरबारी' के लंगड़ की तरह दफ्तरों और अफसरों के चक्कर काटता रहा। हारकर सोचा, नौकरी छोड़ दूँ। अज्ञेयजी ने मदद की। एक बड़े अखबारी प्रतिष्ठान में मेरी दूसरी नौकरी पक्की कर दी। तब कुछ तामझाम के साथ नौकरी छोड़ने के इरादे से मैंने एक लंबा पत्र राज्य सरकार के चीफ सेक्रटरी को लिखा। खत तीखा और चटपटा था; उम्मीद थी कि उसपर कोई खबर बनेगी। पर पता चला कि अंत में चीफ सेक्रेटरी न्याय के पक्ष में यानी मेरे पक्ष में आ गये हैं। आठ–दस दिन में ही इस उपन्यास के प्रकाशन की मुझे सहमति मिल गई और मैं देश के महान् पत्रकारों की कतार में शामिल होते–होते रह गया।

श्रीलाल की प्रतिबद्धता किसी खास राजनीतिक वाद में नहीं, वरन मानवीय मूल्य व मनुष्यता के प्रति थी। स्वयं उन्होंने अपना आत्मकथ्य अभिव्यक्त करते हुए कहा था–'कथालेखन में मैं जीवन के कुछ मूलभूत नैतिक मूल्यों से प्रतिबद्ध होते हुए भी यथार्थ के प्रति बहुत आकृष्ट हूँ। पर यथार्थ की

तरह धारणा इकहरी नहीं है, वह बहुस्तरीय है और उसके सभी स्तर आध्यात्मिक, आभ्यंतरिक, भौतिक आदि जटिल रूप से अंतर्गुम्फित हैं। मेरे सामने यही जटिल क्षत–विक्षत, कभी उन्नत सिर, कभी अधोगत, कभी उल्लसित, कभी विखंडित मनुष्य है–यही मनुष्य, जो सब कुछ के बावजूद मेरे लिए सृष्टि का केन्द्रविन्दु है, जिससे श्रेष्ठतर कोई नहीं है।

तभी तो समाज के हर तबके का, बहुत गहरे पैठकर, समाजशास्त्रीय विश्लेषण उनके रचनाकार का मकसद रहा है। 'रागदरबारी' में अंधेरे–उजाले से जुड़ा समाज का कोई ऐसा तथ्य–कथ्य नहीं है, जा अभिव्यक्ति के तीक्ष्ण धार के साथ अपनी अमिट छाप न छोड़ पाया हो। व्यंग्यकार हरीशनवल का मानना है कि–''साम्यवाद, गाँव–शहर का रिश्ता, जनता–जनार्दन, नेतागिरी, सहकारिता, मैथेमेटिक्स, भाषा, हिन्दुस्तानी की नियत, सिम्बॉलिक मॉडनाइजेशन, धर्म की लड़ाई, वास्तविक द्रव्य, डार्विन सिद्धांत, यूनियनबाजी, विरोधी से व्यवहार, सिनेमा का असर, वीर्य का महत्व, हिन्दी सिनेमा के गाने, नशीले पदार्थ, गुप्त साहित्य, पीढ़ी–संघर्ष, विदेश–प्रभाव, खेती पर लेक्चर?विज्ञापन बाजी, अंग्रेजी का जादू, सरकारी अनुदान, प्यार की फिलॉसफी, गुटबंदी, वेदांत समीक्षा, इंसानियत का अर्थ, गाँधीगिरी का सच, गाँव चुनाव की राजनीति, पद की मर्यादा के असली मायने और भी न जाने क्या–क्या समाजशास्त्रीय सूत्र व व्याख्याएँ श्रीलालजी ने की हैं, जिनका हिन्दी साहित्य में कोई सानी नहीं है। 'रागदरबारी' एक ऐसे समाज की व्याख्या करता है, जिसे केवल बेहद प्रैक्टिकल लोग ही चला सकते हैं। गद्दीनशीं सनीचर जैसे लोग ही होंगे। वैदजी की पॉलिटिक्स के आयाम आँखें खोलते हैं। शिवपालगंज का समाज सच में एक घटना प्रधान समाज है। घटनाएँ एक के बाद एक उभरती चलती हैं। कहीं कोई निष्कर्ष नहीं है, कहीं अंत नहीं है। घटनाएँ विकसित नहीं होती हैं, यह उपन्यास की विशिष्टता है। कोई भी घटना जन्म लेते ही विनाश की ओर अग्रसित होती है। इस उपन्यास में विकास तो दिखाई देता है, पर प्रगति नहीं दिखती। बौद्धिक समाज की शानदार स्कैनिंग 'रागदरबारी' में है।

इसी स्कैनिंग की चर्चा के क्रम में नामवरजी ने उपन्यास के उस अंश को उद्धृत किया था, जो विभिन्न तबकों के किसिम– किसिम के ठहाकों के रोचक शब्दचित्र उकेरता है। सब वर्गों की हँसी और ठहाके अलग–अलग होते हैं। कॉफी हाउस में बैठे हुए साहित्यकारों को ठहाका कई जगहों से निकलता है, वह किसी के पेट की गहराई से निकलता है, किसी के गले से, किसी के मुँह से और उनमें से एकाध ऐसे भी रह जाते हैं, जो सिर्फ सोचते हैं कि ठहाका लगाया क्यों गया?डिनर के बाद कॉफी पीते हुए, छके हुए अफसरों का ठहाका दूसरी किस्म का होता है। वह ज्यादा पेट की बड़ी ही अंदरुनी गहराई से निकलता है। उस ठहाके के घनत्व का उनकी साधारण हँसी के साथ वही अनुपात बैठता है, जो उनकी आमदनी का उनकी तनख्वाह से होता है। राजनीतिज्ञों का ठहाका सिर्फ मुँह के खोखल से निकलता है और उसके दो ही आवाम् होते हैं, उसमें प्रायः गहराई नहीं होती। व्यापारियों का ठहाका होता ही नहीं है और अगर होता भी है, तो ऐसे सूक्ष्म और सांकेतिक रूप में कि पता चल जाता है, ये इनकम टैक्स के डर से अपने ठहाके का स्टॉक बाहर नहीं निकालना चाहते। इन नौजवानों ने जो ठहाका लगाया था, वह सबसे अलग था। यह शोहदों का ठहाका था, जो आदमी के गले से निकलता है, पर जान पड़ता है , मुर्गों, घोड़ों और गीदड़ों के गले से निकलता है।''

सिर्फ उपन्यास में ही नहीं, श्रीलालजी की स्फुट व्यंग रचनाओं में भी समाज का तीखा सच पूरी व्यंग्यधर्मिता के साथ उद्घाटित हुआ है। 'अगली शताब्दी का शहर' भी ऐसा ही एक व्यंग्य है, जिसमें मुख्यमंत्री के पिताश्री के नाम पर एक शहर को आबाद करने की परियोजना पर समिति विचार–विमर्श कर रही है। बंजर जमीन देखकर एक सदस्य को एतराज है, 'परन्तु पहले उजाड़ने के लिए पुराने बाग–बगीचे यहाँ कहाँ है?दूसरे सदस्य की आपत्ति है–मैं ऐसे स्थल के कतई खिलाफ हूँ, जिसे अर्जित करने के लिए एक भी किसान को बेदखल न किया जा रहा हो। किसी को माफिया का अभाव खलता है, तो किसी को भैंसों का। तभी एक सदस्य का सवाल गूँजता है–'हर नई आवासीय योजना में सड़कों पर घूमने के लिए खुले फाटक से मकानों के अंदर घुसने के लिए, नालियों में लोटने के लिए सूअर चाहिए कि नहीं?इंसिफिलाइटिस फैलाने के लिए कोई इंतजाम सोचा है?यह और ऐसे अनेक व्यंग्य इस रचनाकार की पैनी दृष्टि का इजहार करते हैं।

विराट् व्यक्तित्व के धनी, अतिशय संवेदनशीलता, विनम्रता, ईमानदारी के पर्याय श्रीलाल शुक्ल के व्यापक दृष्टिफलक में सामाजिकता व मनुष्यता के विविध रूप मौजूद हैं। उन्होंने गुणात्मक व परिमाणात्मक कालजयी कृतियों के द्वारा न सिर्फ व्यंग्य को हृदयग्राही बनाया, बल्कि इसे शैली से विधा के रूप में विकसित करने में भी अहम भूमिका निभाई। प्रख्यात व्यंग्यकार गोपाल चतुर्वेदी के शब्दों में–'श्रीलालजी ने 'रागदरबारी' में जिस निरंतरता और निमग्नता से व्यंग्य का प्रयोग किया है, वह उसके पहले कभी नहीं, उस अप्रतिम व्यंग्य–शिल्पी को मेरी अशेष प्रणामांजलि!

बुझती प्यास

सत्य शुचि
राजस्थान
मो० 9413685820

तीन दिनों से जल नहीं आए थे, सर्वत्र पानी की दिक्कत विकराल रूप में थी और यहाँ भी मटके मटकियाँ खाली खाली हो चले थे। वस्तु स्थिति का आलम यह है कि पानी का जुगाड़ उससे कहीं भी नहीं बैठा था। बहरहाल जमीन पर धरी रखी वह टंकी उसकी एक आस थी।

''शौचालय के लिए रखा वह टंकी का पानी जब विमंदित गृह के बच्चे पी सकते हैं तो वह क्यूँ नहीं!'' उसने परेशान मुद्रा में सोचा और तुरंत उस केयर टेकर ने वहीं पानी की टंकी के समीप पड़े एक गिलास को उठाया। तत्क्षण टंकी के पानी में गिलास को डुबोया, तत्पश्चात् एक साँस में पानी को गटगट गले में उतारते हुए उसे किंचित् शांति–सी महसूस हुई।

मगर अब भी उसकी क्षुधा–प्यास शांत नहीं हो पाई और इसीलिए एकबारगी वह टंकी की ओर झुक गया।

लालच का नकाब

स्कूल में मृत्युभोज, उस दिन विद्यार्थी गेट पर मटरगस्ती में मशगूल, बेपरवाह से इधर–उधर भागते–दौड़ते वो छात्र... स्कूल बंद तो पढ़ाई भी ठप्प!

ऐसे में स्कूल स्टाफ मृत्युभोज में शामिल देर तलक मायूस–मायूस सा स्टाफ सान्त्वना के दौर से गुजरा। मगर तभी फटाफट स्वादिष्ट–स्वादिष्ट व्यंजनों को ग्रहण करने के बाद स्कूल में उनके चेहरों पर मंद–मंद मुस्कानें पसरती चली गयीं।

समीक्षा

सहरा के फूलः ए.एफ.नज़र

डॉ. रामावतार सागर
ऐसोसिएट प्रोफेसर, म.वि. कोटा
मो० 9484317171

बोधि प्रकाशन, जयपुर से सद्यः प्रकाशित 'सहरा के फूल' उदीयमान एवं प्रतिभाशाली शायर ए.एफ.नज़र का दूसरा ग़ज़ल संग्रह है। आकर्षक मुख्य पृष्ठ से सजे आवरण के भीतर ए.एफ.नज़र की 70 ग़ज़लें संगृहीत हैं। मशहूर ग़ज़लकार पद्मभूषण डॉ. गोपालदास नीरज,डॉ. चन्द्रसेन विरार, डॉ. मोईनुद्दीन शाहीन अजमेरी, अंसार कम्बरी साहिल के आशीर्वचनों से सुशोभित इस सग्रह में भूमिका जनाब सागर करौलवी साहब ने लिखी है।

बेहद संजीदा जमीन से जुड़ी ग़ज़लें कहने में सिद्धहस्त नजर की ग़ज़लों में जहाँ जमाने भर की चिंता है, वहीं जीवन जीने की हौंसला भी छुपा हुआ है, जो न केवल प्रेरणा देता है, वरन जीने का मार्ग भी प्रशस्त करता है।

अपने ही दिल में कहीं सच्ची खुशी का ढूँढ़ना
दोस्तो बाजार में मत जिंदगी को ढूँढ़ना।पृ. 60

जैसे सच्चे शेर कहनेवाले नज़र की ग़ज़लों का एक खास मिजाज है, जो उन्हें दूसरे ग़ज़लकारों से अलग मुकाम देता है। वह है उनकी ग़ज़लों में गहराई तक उतरा हुआ अपनापन, जो पर–परिवार, आस–पड़ोस, परिवेश–पर्यावरण, समाज–राष्ट्र के प्रति दिखलाई देता है। नज़रसाहब के इस ग़ज़ल संग्रह से गुजरते हुए अनायास ही उनसे जुड़ाव महसूस होने लगता है और पे जुड़ाव उस हर शब्द को होगा, जो अपने घर, परिवार, गाँव, समाज और जमीन से जुड़ा हुआ है। इस संग्रह की पहली ग़ज़ल से ही उनका चिंतन स्पष्ट होने लगता है, जिसमें लगातार विकसित होते जा रहे महानगरों ने किस प्रकार हमारे गाँव को लील लिया है।

छत से छत की मीठी बातें और अपनापन छीन लिया
फ्लेटों की चाहत ने हमसे चौड़ा आँगन छीन लिया।

इक्कीसवीं सदी के कथा साहित्य में जहाँ एक ओर गाँव हाशिए पर जाते जा रहे हैं, वहीं यह ग़ज़ल का जादू है, जो आज भी गाँव–कस्बे की न केवल फिक्र करता है, बल्कि इससे बढ़कर उसे अभिव्यक्त करता है। उन्हें आज भी यही लगता है कि गाँव में आपसी भाईचारा और प्रेम मौजूद है। इसीलिए वे कहते हैं–

दिलों में चाह होती है कभी खंजर नहीं होते
हमारे गाँव में ये बदनुमा मंजर नहीं होते।

इस उत्तर आधुनिक सभ्यता और बाजारवाद के दौर में एक अजीब सा डर हमारे दिलोदिमाग में समाया जाता है। पुराने मूल्यों का विघटन होता जा रहा है और नये मूल्यों का सृजन हो रहा है। इन नव सृजित मूल्यों के साथ–साथ सांस्कृतिक प्रदूषण भी हमारे घर परिवार में शामिल होता जा रहा है। नज़र साहब इसे अपनी खुशकिस्मती मानते हैं। अभी तक नयी सभ्यता का असर हमारी ग्रामीण संस्कृति पर इतना अधिक नहीं हुआ, वे लिखते हैं–

नई तहजीब दुनिया की मेरे घर तक नहीं पहुँची
खुदा का शुक्र बेददी तेरे दर तक नहीं पहुँची।

नज़र की ग़ज़लों की सबसे बड़ी सार्थकता यह है कि ये इस भ्रम को तोड़ती है कि समकालीन जीवन सिर्फ शहरों महानगरों तक सीमित है। दिल में अगर उमंगें हों और आदमी की संवेदनाएँ अगर जीवित हों तो उसे हर जगह जीवन दिखाई देता है और इस जीवन का मंत्र भी वे बड़ी आसानी से दे जाते हैं।

जीवन की मुश्किल राहों पर हँसते गाते चलना सीख
अँधियारों को रोशन कर ले दीपक जैसे जलना सीख।

नज़र साहब की ग़ज़लों में शहरों और महानगरों से दूर ग्रामीण परिवेश का ऐसा वितान रचती है, जिसमें अभी भी खुशियाँ जिंदा है, हँसी जिंदा है। इससे भी बढ़कर संस्कृति जिंदा है, उनका स्पष्ट मानना है कि ये गाँव और कस्बे ही हैं, जो हमारी भारतीयता को आज भी जीवित रखे हुए हैं।

रंग बिरंगी रोशनियों के जंगल में खो जाओगे
शहर की जानिब देखोगे तो दीवाने हो जाओगे

और

हमारे गाँव में अब भी सुहानी है फज़ा यारो
सुना है शहरों में तेजाब की बरसात होती है।

गाँव की मिट्टी से उनका जुड़ाव एकदम स्वाभाविक है। भले ही रोजगार उन्हें गाँव से दूर भले ही ले जाए, आई हो वरन गाँव से विछड़ने के दर्द को वो आज भी बड़ी सिद्धत से महसूस करते हैं और इसीलिए कहते हैं–

पुरानी शाख से इस इक सब्ज पत्ता छूट कर रोया
मैं अपने गाँव से निकला तो बरगर फूटकर रोया।

अगर विमर्शों के दृष्टिकोण से इस संग्रह की ग़ज़लों की समीक्षा करें तो वर्तमान प्रचलित सभी विमर्श कमोबेश इस संग्रह में दिखलायी देते हैं–स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, बाजार के साथ– साथ वृद्ध विमर्श भी उनके यहाँ दिखलायी पड़ता है। स्त्री विमर्श के लगभग सभी रूप इनकी ग़ज़लों में समाहित है चाहे बेटी को बचाने की चिंता हो या कामकाजी स्त्रियों का दर्द या फिर गृहिणी के प्रति संजीता नजरिया। संवेदनाओं से लवरेज भावनाओं से पुष्ट एक ऐसा ही संजीदा संग्रह है–

मेरे आने की तारीखें बराबर दिखती होगी
वो हरशव सोने से पहले केलेण्डर देखती होगी
सबेरे रोज अपने वक्त पर स्कूल जाती है
अगर खुद को हमेशा घर अंदर भूल जाती है
मेरे कपड़े किताब कापियाँ बस्ता मेरा खाना
इन्हीं कामों में अम्मा खुद को अक्सर भूल जाती है।

संग्रह की ग़ज़लें जनवादी चेतना से भी ओतप्रोत हैं, दलित हों चाहे आम आदमी की चिंता आप चाहे तो इसे विमर्श का नाम दे सकते हैं, लेकिन इन सबके बीच इंसानियत को बचाने की चिंता नज़र साहब करते हैं। आजादी के इतने सालों बाद भी मगर देश में गरीबी है, तो वे लिखते हैं–

सहर होने का दावा झूठ है सरकार से कह दो
अभी तक रोशनी मजदूर के घर तक नहीं पहुँची

आज भी गरीबी को मिटाने की योजना पाँच सितारा होटलों में बैठकर बनायी जाती है। गरीबों के वास्तविक हालातों से रूबरू होकर काई दिखता नहीं है। आज आधी से ज्यादा सदी बीत गयी आजाद हुए, लेकिन सरकार के दावे झूठे दिखलाई देते हैं–

कहाँ तक सब्र रक्खे बेबसो लाचार की आँखें
ये किन मुद्दों में उलझी हैं मेरी सरकार की आँखें

इक्कीसवीं सदी भूमंडलीकरण और बाजारवाद की है आज सार विश्व अमेरिका पूँजीवाद से पीड़ित है। मुक्त व्यापार के दौर में आज बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ हमारे घरेलू बाजारों को प्रभावित कर रही है। एक डर आदमी के भीतर समाया जाता है। आज बाजार की पहुँच सीधे हमारे घर तक हो गई है, इसलिए वे लिखते हैं कि–

डर के मैं बाजार से जब यार घर में आ गया

मेरे पीछे–पीछे सब बाजार घर में आ गया

जैसे जैसे जीवन में तकनीकी विकास का प्रवेश बढ़ता जा रहा है आम आदमी का जीना मुश्किल होता जा रहा है। वैश्वीकरण के कारण लगातार महानगरों की संख्या बढ़ती जा रही है तो जीवन में भी दहशत बढ़ती जा रही है–

तरक्की ने अजब हालात पैदा कर दिये हैं या रब
नगर बढ़ता है जैसे–जैसे दहशत बढ़ती जाती है

नज़र साहब की शायरी में वृद्ध विमर्श की एक खास झलक दिखाई देती है, कई जगह प्रतीक के माध्यम से तो कई बार सीधे ही माँ और बुजुर्गों के हवाले से बड़े शेर कहे हैं मसलन–

बुजुर्गों का अदब रखती है गाँवों में नजर अब भी
बड़ों के सामने झुक जाती हैं छोटों के सर अब भी

माँ के हवाले से भी कई उमदा शेर नजर ने इस संग्रह की ग़ज़लों में कहे हैं–

ऐ गुरवत छोड़ दे दामन मुझे अब लौट जाने दे
मेरी माँ डूबते सूरज का मंजर देखती होगी
मेरी हर जीत के पीछे यही एक बात होती है
दुआ माँ की भी मेरी कोशिश के साथ होती है।
गरीबी और बचपन दोनों ही जब आ गये जिद पर
मनाकर मुझको माँ रोई मैं उससे रूठकर रोया

दुनिया जहान की तमाम फिक्र के बीच भी नज़र साहब की ग़ज़लों में वह आशिकाना अंदाज भी है, जिसकी वजह से ग़ज़ल को ग़ज़ल कहा जाता है। जैसा कि प्रचलित और स्थापित मान्यता है कि ग़ज़ल शब्द का एक अर्थ यह भी होता है–'औरत से प्यार भरी बातचीत'(वाजनन गुफ्तगू कस्दन) अपने इसी नाजुक मिजाज की वजह से ग़ज़ल है। इस नजरिये से देखा जाए तो नज़र साहब के भीतर आज भी वह शायराना दिल धड़कता है, जो उन्हें शायर बनाता है। इस ग़ज़ल संग्रह में कई खूबसूरत शेर है, जो इस बात की ताईद करते हैं, जैसे–

इसी जज्बे को शायद प्यार कहते हैं जहाँ वाले
तुम्हें कांटा लगे मुझको चुभन महसूस होती है
उसे महसूस होता होगा सीने में धड़कता दिल
मेरी तस्वीर को जब भी वह छूकर देखती होगी

बहरहाल सहरा के फूल ए.एफ. नज़र की लेखनी से सृजित एक बेजोड़ संग्रह है। कथ्य की दृष्टि से जहाँ इसमें काफी विविधता है, वहीं शिल्प की दृष्टि से देखें तो भी यह संग्रह सुदृढ़ नजर आता है।

बादल, बरगद, समुंदर,घटा, हवा, चाँद, सूरज आदि प्रतीकों के माध्यम से नज़र साहब ने बहुत ही उमदा शेर कहे हैं। ग़ज़ल के छन्दशास्त्र की दृष्टि से देखें तो भी ग़ज़ल संग्रह नजर आता है, अगर कहीं टंकन की छोटी मोटी कमी है, तो वह प्रूफ रीडिंग की है, ग़ज़ल के चाहनेवालों को यह किताब जरूर पंसद आएगी। मैं सूरज राय सूरज के इस शेर से अपनी बात समाप्त करना चाहता हूँ कि

गर चाहते हो देखना मेरी उड़ान को
सो थोड़ा और ऊँचा करो आसमान को।

ग़ज़ल

–विजय वर्धन,
मो0 9204564272

जाना कहाँ था और कहाँ जा रहे हैं हम
जीवन की नाव को कहाँ भटका रहे हैं हम
गुरु ने तो दे दिया था हमें प्यार का शबब
पर नफरतों की आग में जले जा रहे हैं हम
हमको तो रहना था सदा ही भ्रष्टता से दूर
इस इसको गले का हार अब बना रहे हैं हम
जाना था हमें मंदिर और मस्जिद के आसपास
पर वेद और कुरान को ठुकरा रहे हैं हम
सारे जहाँ से अच्छा है अपना यह प्यारा देश
पर, पर के संस्कार को अपना रहे हैं हम
आजादी हमने पाई नई भोर के लिए
पर आज दुख का सिलसिला ही पा रहे हैं हम
अब देशद्रोहियों का फसल उगा रहे हैं हम।

ग़ज़ल

अनुपम श्रीवास्तव
जिलाजल राजगढ़ व्यावरा
मध्यप्रदेश,
09425992751

वो उम्र भर साथ चला अजनबी की तरह
वो रोज मिला तो मिला अजनबी की तरह
उसने मुँह फेरा हर बार गैर की तरह
मैंने भी नहीं किया गिला अजनबी की तरह
इस भीड़ भरे सफर में लोगों के साथ
बना रहा एक सिलसिला अजनबी की तरह
व्यस्तताओं में इस कदर खोये कि बगल से
गुजर गया यादों का काफिला अजनबी की तरह
दोस्त बन जो रूला गया जाने के बाद
इससे वो पहले था भला अजनबी की तरह।

(2)

कभी–कभी ओठों पर उँगलियाँ रख लिया करो
हाले दिल सुनाने को खामोशियाँ रख लिया करो
लौटकर वापस न जाये आहटें थककर कहीं
दरवाजे के बाहर कुर्सियाँ रख लिया करो
इस सफ़र में धूम भी साथ देगी कब तलक़
साथ चलने के लिए परछाइयाँ रख लिया करो
जब मुलाक़ातों में कुछ भी ना कहने को बचे
मेज़ पर चाय की प्यालियाँ रख लिया करो
बाहर की भीड़ में कहीं अकेलापन ना लगे,
घर से निकलो तो तन्हाइयाँ रख लिया करो
तस्वीरें कभी तो दीवार का हिस्सा बनेंगी
फ्रेम में जड़कर स्मृतियाँ रख लिया करो
रोजमर्रा की जिंदगी सा प्यार न फीका पड़े
घर से टिफिन में रुसवाइयाँ रख लिया करो

समीक्षा

माखनलाल चतुर्वेदी के काव्य में राष्ट्रीय चेतना

डॉ. सुनील कु0 परीट
संपादक ज्ञानोदय साहित्य संस्था, बेलगाम, कर्नाटक
08867417505

जाओ, जाओ, जाओ प्रभु को पहुँचाओ स्वदेश संदेश
गोली से मारे जाते हैं भारतवासी हे सर्वेश।

ये पंक्तियाँ सन् 1920 में जालियाँवाला हत्याकांड के संदर्भ में शहीदों को याद करते हुए माखनलाल चतुर्वेदी जी लिखते हैं। मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा नवीन और डॉ. रामधारी सिंह दिनकर आदि हिन्दी राष्ट्रीय काव्यधारा के प्रमुख स्तंभ हैं। माखनलाल चतुर्वेदी जी समसामयिक युगद्रष्टा एवं राष्ट्रीय स्वर को उजागर करनेवाले सच्चे राष्ट्रीय कवि थे। उनके काव्य में अनन्य देशप्रेम और निश्चल समर्पण की भावना है। यही देशप्रेम कालांतर में उनके जीवन का एक शक्तिशाली स्वर बन गया। 'पुष्प की अभिलाषा' उनकी सर्वाधिक चर्चित कविता रही और इसके लिए उन्हें सागर विश्वविद्यालय द्वारा डी.लिट्. की मानद उपाधि से सम्मानित किया गया। इसके अलावा अपने काव्य संग्रह 'हिम तरंगिणी' के लिए उन्हें सन् 1955 में 'साहित्य अकादमी' पुरस्कार से भी सम्मानित किया गया। देशप्रेम से ओत–प्रोत उनकी कविता 'पुष्प की अभिलाषा' को कोई कभी नहीं भूला सकता–

''चाह नहीं मैं सुरबाला के, गहनों में गूँथा जाऊँ
चाह नहीं प्रेमी माला के, बिंध प्यारी को ललचाऊँ
चाह नहीं सम्राटों के शव, पर हे हरि डाला जाऊँ
चाह नहीं देवों के सिर पर, चढूँ भाग्य पर इठलाऊँ
मुझे तोड़ लेना वनमाली, उस पथ पर देना तुम फेंक
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने, जिस पथ जावें वीर अनेक।।''

माखनलाल चतुर्वेदी और अन्य नेता आजादी के लिए वे बहुत चिंतित थे। लगातार इस दिशा में चिंतन–मनन करते रहे। इसी कारण 1908 में हिन्द केसरी में आयोजित 'राष्ट्रीय आंदोलन और बहिष्कार' निबंध प्रतियोगिता में उनको पहला स्थान मिला। 'मेरा भारत देश महान' के अनुसार माखनलाल चतुर्वेदी जी हमेशा अपने देश को महान ही समझा है। अपने देश और गरिमामयी संस्कृति का वर्णन अपनी कविता में 'प्यारे भारत देश' में इस प्रकार किया है–

''प्यारे भारत देश
गगन गगन तेरा यश फहरा
पवन पवन तेरा बल गहरा
क्षिति जल नभ पर डाल हिंडोले
चरण चरण संचरण सुनहरा
ओ ऋषियों के त्वेष
प्यारे भारत देश।''

माखनलाल चतुर्वेदी हिन्दी साहित्य में 'एक भारतीय आत्मा' के नाम से प्रख्यात हैं। स्वतंत्रता संग्राम की ओर आकर्षित होकर गांधीवाद से प्रभावित हो गये। स्वतंत्रता संग्राम के सक्रिय सेनानी होने के कारण कई बार इनको जेल भी जाना पड़ा। इनकी कविता में अनुभूति, भावना, आदर्श, त्याग, राष्ट्रप्रेम, समाज कल्याण आदि का बड़ा महत्व है। महात्मा गांधी जी की सत्य अहिंसा, तिलक का बलिदान भावना और कविवर रवीन्द्र की मानव पूजा आदि इनके काव्य के आधार तत्व हैं।

उन्होंने अपनी पत्रकारिता के माध्यम से ब्रिटिश शासन के खिलाफ अपनी आवाज को बुलंद किया और युवाओं को देश की स्वतंत्रता के लिए मर मिटने का आह्वान किया। उनकी रचनाओं में सशक्त भावनाओं को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। पत्रकारिता के क्षेत्र में एक नया बदलाव माखनलाल चतुर्वेदी से ही प्रारंभ हुआ है।

माखनलाल चतुर्वेदी का जीवन असामान्य था, उनका संपूर्ण जीवन ही देश के लिए समर्पित था। जैसे स्वामी विवेकानंद को एक कोरा संन्यासी, महात्मा गांधीजी को एक कोरा राजनेता कहकर टाला नहीं जा सकता, ठीक उसी प्रकार पंडित माखनलाल चतुर्वेदी को कोरा साहित्यकार या पत्रकार कहकर नहीं टाला जा सकता है। पंडित माखनलाल चतुर्वेदी का अद्‌भुत व्यक्तित्व स्वतंत्र सेनानी, विशुद्ध साहित्यकार, क्रान्तिकारी कवि एवं निर्भीक पत्रकार की मिली–जुली रेखाओं से बनता है। वे कर्म से योद्धा, बुद्धि से चिंतक, दिल से कवि, स्वभाव से संत और अद्‌भुत बेजोड़ प्रवक्ता थे। उनका संपूर्ण जीवन और चिंतन भारतीय समाज की रक्षा करने और सँवारने के संदर्भ में अभिव्यक्त हुआ है। माखनलाल चतुर्वेदी का जीवन जनसाधारण–सा नहीं था। उनके व्यक्तित्व के विकास के कारण सामान्य परिवार में जन्म और संघर्षपूर्ण जीवन था। वे अपने संघर्षरत जीवन के बारे में कहते हैं कि–

सूली का पथ ही सीख हूँ, सुविधा सदा बचाता आया
मैं बलि पथ का अंगारा हूँ, जीवन ज्वाला जलाता आया।।

माखनलाल एक कुशल वक्ता भी थे। जब वे बोलते थे तो लोग शांत हो जाते थे। उनके वक्तृत्व कला पर महात्मा गांधी भी मुग्ध थे। उन्होंने एक बार टिप्पणी की थी–'हम सब लोग तो बात करते हैं, बोलना तो माखनलालजी ही जानते हैं।' सन् 1933 में मध्यप्रदेश में महात्मा गांधी जी के हरिजन दौरे के समय बाबई पहुँचे थे। तब उन्होंने कहा था–'मैं बाबई जैसे छोटे स्थान पर इसलिए जा रहा हूँ; क्योंकि वह माखनलाल जी का जन्म स्थान है। जिस भूमि ने माखनलाल जी को जन्म दिया है, उसी भूमि को मैं सम्मान देना चाहता हूँ।' माखनलालजी अपने से भी ज्यादा हमेशा देश को ही चाहा है, प्राणों की चिंता तो उन्हें कभी की ही नहीं। इसलिए उनकी 'कैसी है पहिचान तुम्हारी' कविता की पंक्तियाँ याद आती है–

कैसी है पहिचान तुम्हारी
राह भूलने पर मिलते हो
प्राण, कौन से स्वप्न दिख गये
जो बलि के फूलों खिलते हो
कैसी है पहिचान तुम्हारी
राह भूलने पर मिलते हो।

'एक भारतीय आत्मा' नाम माखनलाल चतुर्वेदीजी के लिए अत्यन्त योग्य उपनाम है। क्योंकि 'एक भारतीय आत्मा' उस व्यक्ति का नाम है, जिसने

भारत और भारतीयता की अस्मिता को पूरी तरह आत्मसात कर उसकी रक्षा में अपनी रचनाधर्मिता को समर्पित करने में विश्वास किया। 'एक भारतीय आत्मा' ऐसा नाम है, जिसने भारत की परतंत्रता को स्वीकार करने के बजाय उसकी स्वतंत्रता के लिए कारावास का कष्ट झेलने में भी सुख का अनुभव किया। भारतीय आत्मा शब्द का संकेत है कि भारत मेरा देश है और मैं इसकी आत्मा हूँ। यह एक ऐसा उपनाम है, जो कवि के मानस में व्याप्त भारत देश पर अपने नैसर्गिक अधिकार को दर्शाता है। सच में माखनलालजी में देशप्रेम कूट–कूटकर भरा हुआ था, अपने आपको और देश के सभी जवानों को सिपाही मानते थे। उनकी 'सिपाही' कविता की कुछ पंक्तियाँ देखेंगे तो देशप्रेम उमड़ आएगा–

बोल अरे सेनापति मेरे!
मन की घुंडी खोल
जल थल नभ हिलडुल जाने दे,
दे हथियार या कि मत दे तू
पर तू कर हुंकार
ज्ञातों को मत, अज्ञातों को
तू इस बार पुकार!
धीरज रोग, प्रतीक्षा चिंता
सपने बनें तबाही
कह 'तैयार'! द्वार खुलने दे
मैं हूँ एक सिपाही!

माखनलाल जी के काव्य में बलिदान, समर्पण, विद्रोह, गांधीवादी दृष्टि, वीरपूजा तथा प्रेम आराधना के स्वर प्रमुख हैं। देश की स्वतंत्रता के लिए कृतसंकल्प लोकमान्य बालगंगाधर तिलक से दादा माखनलाल प्रभावित थे। राष्ट्रपिता गांधीजी के संपर्क में आने के बाद वे स्वतंत्रता आंदोलन में कूद पड़े। वे कई बार जेल गये। बिलासपुर में सन् 1922 में भड़काऊ भाषण देने के लिए उन्हें जेल जाना पड़ा। इसी दौरान उन्होंने बिलासपुर जेल में 'पुष्प की अभिलाषा' कविता की रचना की। उन्होंने अपनी रचना से जनमानस को स्वतंत्रता की लड़ाई के लिए उत्प्रेरित किया। कर्मवीर में उनके द्वारा लिखे गये लेखों ने अंग्रेज सरकार की नींद उड़ा दी थी। माखनलालजी का मानना था कि विदेशी शासन और अत्याचार के खिलाफ जिस व्यक्ति के हृदय में ज्वाला न धधके तो वो कैसा भारतीय है? उसका जीवन ही निरर्थक है, वह मृत सदृश है–

द्वार बलि का खोल
चल भूडोल कर दे
एक हिमगिरि एक सिर
का मोल कर दे
मसलकर, अपने इरादों सी उठाकर
दो हथेली हैं कि
पृथ्वी गोल कर दें
रक्त है या है नसों में क्षुद्र पानी
जाँच कर, तू सीस दे–देकर जवानी।

भाषा और शैली की दृष्टि से माखनलाल पर आरोप किया जाता है कि उनकी भाषा बड़ी बेडौल है। उसमें कहीं–कहीं व्याकरण की अवहेलना की गयी है। भाषाशिल्प के प्रति माखनलाल जी बहुत सचेष्ट रहे हैं। उनके प्रयोग सामान्य स्वीकरण भले ही न पायें, उनकी मौलिकता में संदेह नहीं किया जा सकता। चतुर्वेदी जी एक लोकप्रिय कवि, एक दिग्गज पत्रकार और हिंदी के कुशल लेखक थे।

माखनलाल चतुर्वेदी सरल भाषा और ओजपूर्ण भावनाओं के अनूठे हिन्दी रचनाकार थे। राष्ट्रीयता माखनलाल चतुर्वेदी के काव्य का कलेवर है तथा रहस्यात्मक प्रेम उसकी आत्मा है। 30 जनवरी, 1968 को साहित्य जगत का यह सितारा संसार से सदा के लिए ओझल हो गया। अब तो उनकी स्मृति ही शेष है। दादा माखनलाल चतुर्वेदी जीवनभर पतझड़ झेलते रहे, पर दूसरों के लिए हमेशा बसंत की कामना की। वे एक ऐसे क्रांतिद्रष्टा थे, जिन्होंने जीवन के हर क्षेत्र में संघर्ष किया। ऐसे 'एक भारतीय आत्मा' को शत शत नमन करते हुए आइए उनकी कविता 'दीप से दीप जले' के अनुसार देशप्रेम का, मानवता का दीप जलाएँ–

सुलग सुलग री जोत दीप से दीप मिलें
कर कंकण बज उठे, भूमि पर प्राण फलें।
युग के दीप नए मानव, मानवी ढलें
सुलग सुलग री जोत दीप से दीप जलें।

यादें

प्रेरणा
लखीसराय
मो० 7322081619

कहाँ गये सब खेल खिलौने
कहाँ गई अम्मा की मार
कहाँ गई मीठी सी चूरन
जिसमें बसता था संसार
कहाँ गया मेरा हठ करना
कहाँ छिपी जीत और हार
छूट गई झिड़की मीठी सी
जिसमें बसता था तेरा प्यार
भैया संग संग खेले थे
संग किया सब कुछ स्वीकार
बाँट के रोटी हमने खायी
अब घर पर उनका अधिकार
मुझे पराये देश पठाकर
कैसा धर्म निभाते हो
तोड़ मोह का अपना बंधन
कैसा प्यार जताते हो
बाबा ला दो वही खिलौने
जिन संग बचपन में खेली
वही ठठाकर हँसना ला दो
ला दो बचपन की अठखेली
ला दो मेरा वही बालपन
वही झूठ का रोना धोना
वही चमकता तारा ला दो
चाहूँ देख जिसे मैं सोना
बाबा ला दो वही घरौंदे
झिलमिल सी मोती वाली
ला दो मेरा वही मचलना
उसपर माँ की मीठी गाली
सपनों में ब्याह रचाती लाडो
स्वयं खड़ी बनकर साकार
चली माँगने आज विदाई
और ममता की उजली धार
छायी है मुस्कान मोहिनी
झुकी नयन काजल वाली
तेरी लाडो चली पिया संग
दिल जैसे खाली खाली
चली बाग हरियाली लेकर
दूर सजन का मन हरने
किसी हृदय को सूना करके
कहीं दूर आँगन भरने
तेरे मन की मीठी बगिया से
अलग कहीं कुम्हलाऊँगी
ममता गर सो गई तुम्हारी
तो फिर जाग न पाऊँगी
किसे लाड़ से बाबा कहकर
मन की प्यास मिटाऊँगी
कहीं किसी कोने में छिपकर
अश्रू जल बरसाऊँगी।
दौड़ गले से मिलना चाहूँ
बाँध रही है स्वर्ण जंजीर
कुचल रही पाँव की बिछिया
पर चुपचाप खड़ी गंभीर
मुसकाये सौभाग्य तुम्हारा
स्वर्णलता सी हो अम्लान
सबको देना प्यार माधुरी
सबसे नित पाना सम्मान
जाओ लाडो छोड़ बालपन
की बजती मीठी मंजीर
प्यार पिया की तुझे बाँध ले
बनकर पाँवों की जंजीर।

तेरी आँखें

डॉ. अवधेश चंदसौलिया
ग्वालियर म.प्र. 9425187203

टिमटिम करते नक्षत्रों सी
विश्व मोहिनी तेरी आँखें।
सीप मीन बन सदा लुभातीं
प्यास बढ़ातीं तेरी आँखें
झील पे फैली बनी कुमुदनी
श्याम मेघ कजरारी आँखें
बिन अंजन रंजन हैं खंजन
काननचारी तेरी आँखें
हैं प्रशांत सागर–सी आँखें
गहराई की थाह न आँखें
दोलित पीपर–पात हुई हैं
चंचल हिरनी जैसी आँखें
नीलगगन में नीलकमल सी
खिलतीं रहतीं तेरी आँखें
प्रणयहया के रक्तिम डोरे
मुकुल बनी ललचाएँ आँखें
थिरक–थिरक मन नाचा करता
मन–दरपन में तेरी आँखें
सोते–जागते रोते गाते
आगे पीछे घूमें आँखें
तन–मन भूला जगभर भूला
देख–देखकर तेरी आँखें
पल–पल बदलें रूप मनोहर
जादूगरनी तेरी आँखें
छुई–मुई जैसी लाज लपेटी
लगतीं कभी कटारी आँखें
देख–देख मन चाह बढ़ातीं
मिल्की वे हैं तेरी आँखें
छोड़ जाएगा मदिरा पान
जिसने देखीं तेरी आँखें

ग़ज़ल

–विज्ञानव्रत, नोएडा 9012275039

आप से रिश्ता रहा
और मैं ज़िन्दा रहा
था नहीं मैं उस जगह
बस वहाँ दिखता रहा
ख़त कभी भेजा नहीं
पर उन्हें लिखता रहा
वो न थे मंजिल मेरी
जिनका मैं रस्ता रहा
मैं कहीं पहुँचा नहीं
यूँ सदा चलता रहा

2
उनसे तो अब क्या पूछूँगा
मैं खुद को खुद ही ढूढूँगा
तुमसे जितनी बार मिलूँगा
और नया हर बार लगूँगा
एक सुबह ऐसी आएगी
मैं सूरज होकर निकलूँगा
खुद को साथ लिए फिरता हूँ
खुद को और कहाँ रक्खूँगा
पहले उनकी बातें सुन लूँ
फिर मैं अपनी बात कहूँगा

3
जब उन्हें महसूसता हूँ
रब उन्हें महसूसता हूँ
मैं रहा अहसास जिनका
अब उन्हें महसूसता हूँ
अब किसी को क्या बताऊँ
कब उन्हें महसूसता हूँ
आज जो अहसास हूँ कुछ
तब उन्हें महसूसता हूँ
आज अपनी जिंदगी का
एब उन्हें महसूसता हूँ।

4
वो मेरा हो जाए तो
एक ऐसा दिन आए तो
उसका जी बहलाने में
मेरा जी भर आए तो
उससे नफ़रत है लेकिन
वो मेरा कहलाए तो
घर का मालिक अपने घर
मेहमाँ होकर आए तो
लमहे भर का कर्ज़ कोई
जीवन भर लौटाए तो

हस्ती हिन्द सितारा है

–विभा माधवी

गुरु रहा है कभी विश्व का, हस्ती हिन्द सितारा है
भारत हमको जां से प्यारा,न्यारा देश हमारा है
उत्तर में है खड़ा हिमालय, इसकी रक्षा करता है
दक्षिण में पाँवों को धोता,सागर पीड़ा हरता है
दास भाव से सेवा करते, इसका कर्ज उतारा है
पश्चिम में है अरब का सागर, पूर्व में बंगाल की खाड़ी
दोनों मिलकर निशिदिन करते, भारत की पहरेदारी
आँख उठाकर कोई देखे, इसको नहीं गँवारा है
दुनिया का सरताज रहा है, हमको इसपर नाज रहा है
दुखिया जो भी निर्धन दुर्बल, उसकी यह आवाज रहा है
डूब रहा है जो भी दुख में, उसका कूल किनारा है
भारत की उर्वर भूमि है, मिट्टी सोना उपजाती
सवा अरब की सेवा करती, खुशियों से नहलाती है
अद्भुत रंग छटा है इसकी, अद्भुत रूप नजारा है
इसकी है हर चीज निराली, बाग बगीचा नदिया उपवन
कभी वसंत मदमाता आता, बरसाता है जमकर सावन
रूत इसको समता सिखलाती, इसका राज दुलारा है
लोग अनेक भाषा–भाषी, हिलमिलकर सब रहते हैं
जात धर्म का भेद भूलकर, भाई–भाई कहते हैं
सबने ही है दी कुर्बानी, जब भी हिन्द पुकारा है
गुरु रहा है कभी विश्व का, हस्ती हिन्द सितारा है
भारत हमको जां से प्यारा,न्यारा देश हमारा है

माँ

विश्वम्भर पाण्डेय
'व्यग्र' गंगापुर सिटी राजस्थान 9549165579

कभी वो हाथ
सुकोमल से
फेरती थीं
मेरे सर पर
तो मैं कहता
माँ! क्यूँ बिगाड़ती हो मेरे बाल
समझ नहीं पाता था
उसके भाव
पर, आज वो ही हाथ
सूखकर पिंजर हो गये
अब मैं चाहता हूँ
वो मेरे सर पर
फिर से फेरे हाथ
चाहे मेरे बाल
क्यों न बिगड़ जायें
बस, ये ही तो अंतर है
बालपन में
और आज की समझ में
पर अब माँ
बिगाड़ना नहीं चाहती
सर के बाल
वो चाहती है
मैं बैठूँ उसके पास
देना नहीं, लेना चाहती
मेरा हाथ अपने हाथ में
बिताना चाहती है कुछ पल
बतियाना चाहती मुझसे
पा लेना चाहती है
अनमोल निधि जैसे।

चिड़िया

महेन्द्र देवांगन 'माटी',
गोपीबंद पारा पंडरिया,
कबीरधाम छग, 8602407353

लाती तिनका
बनाती है घोंसला
बच्चे पालती
दाना चुगाती
चींव चींव करती
भूख मिटाती
पंख फैलाती
उड़ना भी सिखाती
चिड़िया रानी
नीड़ बनाती
बच्चे चहचहाते
शोर मचाते
प्यार करती
चहकती चिड़ियाँ
खुश रहती
सुंदर पक्षी
बहेलियों का डर
माँ बतलाती
जाल फैलाते
दाने का लोभ देते
झट फसाते।

ग़ज़ल

सुधीर कुमार प्रोग्रामर
सुलतानंगज भागलपुर 9334922674

जब कभी मामले बड़े होंगे
कन्या कश्मीर तक खड़े होंगे
भारती के सपूत सीमा पर
तोप के सामने अड़े होंगे
दोस्तो झुकके तुम नमन कहना
लाल जिनके समर लड़े होंगे
श्वेत साड़ी में लाल गोदी में
चूड़ियों के भी दिल कड़े होंगे
हो सके जश्न तुम मना लेना
जब तिरंगे में हम पड़े होंगे।

2
नज़र बंद करके निहारा करेंगे
तुम्हें धड़कनों में सँवारा करेंगे
न दीवार होगी न इल्ज़ाम होंगे
तन्हाई में दोनों गुज़ारा करेंगे
सितारों के छींटे पड़े रागिनी पर
खिली चाँदनी में निखारा करेंगे
बहुत बेकरारी बढ़ेगी तो सुन लो
खुली खिड़कियों से पुकारा करेंगे
इशारों की भाषा इशारों में कह दूँ
ख़ता ये दुबारा तिबारा करेंगे।

3
बड़े ताबूत में आये हैं हमारे सौहर
सभी अख़बार में छाये हैं हमारे सौहर
गिराये आठ बादियों को ठोक सीमा पर
लहू से जश्न मनाये हैं हमारे सौहर
थके हुए हैं अभी और ज़रा सोने दो
चला के तोप जो आये हैं हमारे सौहर
सुना है ज़श्ने आजादी आज भारत में
ये तिरंगा भी रंगाये हैं हमारे सौहर
हमें तो मिल गया ईनाम वीरभूमि से
नया सिन्दूर जो लाये हैं हमारे सौहर

4
आइये यह सज़ा दीजिए
सच से पर्दा हटा दीजिए
मेरे सीने में जो आग है
मुस्कुरा के हवा दीजिए
प्यार से नींद आ जाएगी
कई नग़मा सुना दीजिए
ग़म में रम से भी ज्यादा असर
कायदे से पिला दीजिए
क्यों शिकायत करें गैर से
हो ख़ता तो बता दीजिए

कविता :

खुदा

छवि निगम
चारबाग, लखनऊ

देखना
इस अंधेरों के शहर में
अबकि एक चाँद बो दूँगी
चाँदनी के पत्तों पर
पाँव रखते रखते
पहुँचूँगी
तुम तक
खींच उतारूँगी
रख दूँगी
तुमको
काले चीकट गालों पे
भिंगो दूँगी
उन पर खिंची
किसी अधगीली लकीर में
अटका दूँगी
किसी खाली उधड़ी जेब की
लटकी सीवन में
फिर
चीखना
किसी बेआवाज तमाचे में
तड़पना
बेबस इंतजार की आँखों में
घिसटना
टूटे तले की चप्पल में उलझ
भटकना
एक बेबस माँ के लिखे बैरंग खत में
सुनो
अब तुम
पीड़ा का अर्थ समझना
अबकि तुम
औरत की देह ले जन्मना
फिर बताना
कि अब
खुदा कौन
कैसा दीखता है तुम्हें?

मनुहार

रविशंकर सिंह
रानीगंज बर्धवान
मो० 9434390419

बाबा! बहुत डर लगता है
अपनी जमीन से कटने का डर
नई जमीन पर बसने का डर
सामने एक अंधा कुआँ है
मैं उसमें धँसती जा रही हूँ
सवालों के सलीब पर खड़ी
मैं सोचती हूँ
क्या सासु माँ, माँ जैसी ही होगी?
ससुर तुम्हारी तरह नेह–छोह करेंगे?
मेरे सपने का राजकुमार
दीखता तो भला है
क्या वह मेरे सुख दुख सुनेगा?
वह मेरा गुण गहेगा?
मेरी पलकों से ढुलकते मोतियों का
मोल अब कौन देगा?
सवाल मन में चुभता है
मन को हरदम मथता है
बाबा! मैं अपनी हँसी–ठिठोली
बचपन की तुतली बोली
आँगन में नीम तले छोड़ आई हूँ
घर के हर कोने में मेरी किलकारियाँ
रची–बसी हैं
उन्हीं से अपना मन बहलाना
माँ मैं जब–जब आऊँ
मुझे वही लोरियाँ सुनाना
जिन्हें सुनकर मैं बड़ी हुई
तुम मुझे उन्हीं नजरों से देखना
जैसे तुमने मुझे पालने में देखा था
सब मुझे सयानी समझते हैं
तुम मुझे अपनी छुटकी लल्ली ही समझना
माँ! मेरी खातिर बस इतना ही करना।

सजा

संजय वर्मा 'दृष्टि'
शहीद भगत सिंह मार्ग,
मनावर, धार (म.प्र.)

प्रसव वेदना का दर्द
झेल चुकी माँ
खुशियाँ के संग पाती
नन्हें शिशु को
होठों से शीश चूमती
तभी कल्पनाएँ भी
जन्म लेने लगतीं
उसके बड़े हो जाने की
नजर न लगे
अपनी आँखों का काजल
अंगुली से निकाल
लगा देती है टीका
बीमारियों के टीके के साथ
भ्रूण हत्यारों को
सजा दिलाना जरूरी है
क्योंकि, कई माँ
ममतामयी निगाहों से
आज भी खोज रही
अपनी बच्चियों को
किन्तु वे बेगुनाह
माँ के दूध का कर्ज
कैसे अदा करेंगे
जो इस दुनिया में
भ्रूण हत्या की वजह से नहीं है

कविता

अकेली औरत

डॉ अशोक सिंह
गोड्डा
मो० 9431339804

अकेली औरत
उस सुनसान सुंदर हवेली की तरह होती है
जो भीड़ भरे भाहर की आखिरी छोर पर खड़ी
अपनी नक्काशियों पर रोती है
लोग कहते हैं
जिस गली से गुजरती है
वह गली तक अकेली और उदास हो जाती है
यहाँ तक उसके घर की तरफ से
आनेवाली हवा भी जिसे छू जाती है
वह भी हो जाता है शिकार अकेलेपन का
अकेली औरत के अकेलेपन में कोई देवता नहीं होते
होती है जानी पहचानी सी एक पुरुष परछाई
अपनी अनुपस्थिति में भी दर्ज करता उपस्थिति
जो छाया है उसके पूरे वजूद पर
उस अमरवेल की तरह
जिसका न जड़ होता है न पत्ता
अकेली औरत
रात रात भर करवट बदलती
टटोलती है बिस्तर पर उसे
जो उसका होकर भी उसका नहीं होता
उसे भी जो पूरी तरह उसका नहीं होकर भी
बना रहता है उसके लिए अनिवार्य
अकेली औरत
रोज रात गिरती है बिस्तर पर
बारिश में कच्ची दीवार की तरह भरभराकर
और उठती है हर सुबह
घर की छत से धुआँ की तरह
आईने से डरती है
आईना भी डरता है उससे
उसकी उम्र दीवार पर लगे
पुराने पलस्तर सी झड़ती है रह–रहकर
अकेली औरत
अक्सर शून्य में खोयी
ढूँढ़ती रहती है अपने भीतर कुछ न कुछ
कभी कभी सामने दीवार पर लगी
तस्वीर निहारती सोचती है
काश! तस्वीर में जड़ा आदमी साकार हो
सामने खड़ा हो जाता तो
जी भर बतियाती अपना सुख दुख
और लिपटकर सारी रात उसमें
सो जाती कभी न उठने के लिए
अकेली औरत का हँसना नहीं देख पाता कोई
न ही सुन पाता है उसका रोना
उसके भीतर से निकली चीख तो
दीवारों से टकरा कर उसके भीतर ही
गुम हो जाती है न जाने कहाँ...
कभी कभार जो हँसती है ठठाकर
काँप जाती हैं दसो दिशाएँ
रोती चीखती है दहाड़ें मारकर
तो डोलने लगती है धरती
अकेली औरत न सिर्फ अपने आपसे
पूरे मोहल्ले और भाहर तक से रहती है बेखबर
नहीं जानती यह राज कि
मोहल्ला रखता है
उसपर नजर
अपने अकेलेपन में अपने आपके सिवा
किसी और से नहीं बतियाती वह
पर पूरा मोहल्ला बतियाता है फुसफुसाहट में
जो खासकर वे पड़ोसी औरतें
जो दूसरे की परिछाईं से भी
दूर रहने की सलाह देती
रखती है उसके बारे में सबसे ज्यादा खबर
अकेली औरत
अक्सर भूल जाती है कुछ न कुछ
कभी उसका रखा बटुवा उसे नहीं मिलता
तो कभी चाभी का गुच्छा ही हो जाता है गुम
घर की बहुत सारी जरूरी चीजों से बेखबर
पता नहीं क्या ढूँढ़ती है अपने अकेलेपन में
कि उसकी अव्यवस्थित दुनिया में
कुछ भी नहीं रहता व्यवस्थित
सिवा उसके उस अतीत के
जिसे झाड़ पोंछकर रखती है हर रोज
सबकी नजरों से बचाकर
अकेली औरत को
यह भरी–पूरी सुंदर दुनिया रेगिस्तान लगती है
फूलों से ऐसी नफरत मानो
उसका मुँह चिढ़ाते हों फूल
लगाव अँधेरों से इतना
रोशनी दूर तक नहीं फटकती उसके
कोई भी सुंदर दृश्य हो
या कर्णप्रिय संगीत
छूकर उसकी आत्मा को
बदल नहीं सकता उसका मन मिजाज
अपनी पीठ पर
हजारों नजरों के
तीर की चुभन झेलती
अकेली औरत चलती है सड़क पर
नजरों से कुरेदती जमीन
नहीं देखती कभी किसी को नजर उठाकर
और कभी जो किसी को
देख लेती हैं पलकें उठा
तो आदमी डर जाता है
उसकी आँखों के ताप से!

कविता

मिथिलेश कुमार,
सीवान बिहार, 9661153521

1. इस बुरे दौर में
आज पग पग पर
सुनाई देती है रोज ब रोज
कोई न कोई दुर्घटना
कि सुनते सुनते दहल उठता है
आदमी का दिल
घर से बाहर निकलता आदमी
बार–बार सोचता है
कि वो लौटकर घर वापस
फिर आएगा या नहीं
आदमी दहल जाता है
सुन–सुनकर
आदमी कितना झेलता है
जिंदगी में तनाव
फिर झेलता है
सहता है
असहनीय पीड़ा
इस बुरे दौर में

2. हमारी आवाज
बचपन से देख रहा हूँ
हर रोज दबाई जाती है
हमारी आवाज
हमारे ही घर में और
हमारे समाज में
हमारे बड़े बुजुर्गों के द्वारा
ताकि हम आगे नहीं बढ़ सकें
सामाजिक रूप से
हमारी कहीं पूछ न हो
हमारा कोई वजूद न हो
और न कोई मोल रहे हमारा
समाज के भीतर
हररोज हरपल
पग पग पर
दबाई जाती है
हमारी आवाज
हमारा वजूद
हमारा नाम
ताकि हम पुकारे न जाएँ
समाज में कहीं अपने नाम से

मृत्युदंड

आर. शांता सुन्दरी
हवसीगुडा, हैदराबाद, 9908347273

हट जाता है फैसले का परदा
छूटते जा रहे सारे पल
मिटा रहे हैं हरेक खून का कतरा
रोज हालचाल पूछनेवाला उदयास्त
बिला नागा लेते हैं विदा
हथेली में पकड़कर रखना चाहा था
जिन आखिरी किरणों को
ओझल होते जा रहे हैं वे धीरे धीरे
स्वजन छोड़ गये थे जो खून के आँसू
गीला स्पर्श उनका
सहला रहा है सिर अबतक
भूख, आदर्श, स्वाभिमान
बन जाते हैं जब हथियार
तो पकड़े जाने के बाद ही
पता चलता है नतीजा
गले में फाँसी के फंदे की कल्पना से
मौन रह जाता है वह
कटघरे के घनीभूत घुप्प अँधेरे में
कारण कोई भी हो
खाकी के जूते हों
या काले चोगे
जान के बदले जान
यही न्याय है उनका
अधिकार कवच के बिना
कितना बड़ा अपराध है शिकार करना
जाल में फँसने के बाद
बाहर निकल सकने की असहायता
क्या रह गया है
इतना सब कुछ हो जाने के बाद
बूचड़खाने में अपनी बारी का इंतजार
करनेवाली
भयभीत आँखों के सिवा?

2. बेटी

सुबह हमेशा
सुंदर और प्यारी होती है
बेटी की तरह
जबतक रहती
उत्साह से भर देती है घर को
अँधेरे में धँसने से बचाती है
चाँद का दिया जलाकर
अंदर पड़े तारों को खींचकर बाहर
ओझल होते सूर्य सी
अपने घर चली जाती है
बेटी
याद दिलानेवाली नई निशानियाँ
पीछे छोड़ जाता है।

देख रहा हूँ हँसते लोग

संजय कुमार गिरि
दिल्ली–53 9871021856

देख रहा हूँ हँसते लोग
हमको मूर्ख समझते लोग
मतलब की दुनिया है यार
मतलब के हैं सारे लोग
करते हैं ये अपनी बात
नहीं किसी की सुनते लोग
मूछों को देते हैं ताव
मुफ्त की खानेवाले लोग
करते हैं ये किसकी बात
किसके हैं दीवाने लोग
पैसेवालों का ये हाल
खाली बटुवे रखते लोग
मुफ्त की खाने की आदत है
क्यों मेहनत से डरते लोग
बिल का चुकाना 'संजय' यार
कहकर भाग निकलते लोग।

ग़ज़ल
आग ये कैसी लगाई जा रही है
भूख अब पैसे की बढ़ती जा रही है
ज़िंदगी से तिलमिलाती जिंदगी
आबरू नारी की लूटती जा रही है
कर दिया है क़त्ल रिश्तों का यहाँ
नफ़रतों की आग घटती जा रही है
ये मोहब्बत ही न हो ऐ मेरे दिल
एक सूरत दिल में उतरी जा रही है
दोस्ती किससे करें अब 'संजय' हम
दोस्ती भी छल से भरती जा रही है।

बाल संसार

निहार रंजन
टिगरिस मार्ग, दिल्ली छावनी
09968062186

कुसमित, पुष्पित, पल्लवित, सुंदर प्यारा
मनोहारी न्यारा अद्भुत है वात्सल्य हमारा
कोमल गालों पर बिखरी मुस्कान हर लेता गम का हाला
ममता करुणा वात्सल्य प्रेम से भर देता जीवन का प्याला
कहते हैं बच्चे भगवान का रूप हैं सहज हैं सरल हैं
नन्हीं सी जान है मधुर है कोमल है तरल है
ना ईर्ष्या है ना विषाद है कभी शांत तो कभी चंचल है
ना जाने किसकी नजर लगी अबोध के जीवन में भी आज गरल है
कहीं होता खिलौने लाख तो किसी को टूटी गाड़ियाँ भी नसीब नहीं
किसी के तन सजे वस्त्र रंग–विरंगे,
किसी के तन को चिथड़े का भी भार नहीं
कहीं बिखरे होते मेवे मिष्टी,
किसी को टुकड़ों का मिलता दान नहीं
कहीं बहे ए.सी. का बयार,
किसी को स्नेह के ठंडक का भी है भान नहीं
कोमल हाथों से जूठन धोते ढाबों पर, कोई रेस्त्रों में झाड़ू देता
कोई गंदगी सफाई करे रेल में, कोई सड़क पर करतब करता
कोई करता चाकरी घर पर, कोई फैक्ट्री में दिन रात रगड़ता
कोई खेतों में तो कोई जानवरों के पीछे चलता
हाय जीवन को तरसता
कहते हैं स्कूल बढ़े हैं कॉलेज खुले हैं, शिक्षा का विकास हुआ है
गर पढ़ लिख लिये तो गाँव छोड़ परदेश चले हैं
मिट्टी से दुराव हुआ है
स्वजन परिजन सब दूर चले हैं 'स्व' का ही बस विकास हुआ है
नहीं सुरक्षित आज कोमल कपोल जीवन मूल्य का बस ह्रास हुआ है
बाल प्रथा बाल सुरक्षा बेटी बचाओ सुशोभित हो रहा नारों में
टीभी पेपर मैगजीन में चर्चा रहता है बरकरार भाषणों का भरमार
बोल तोलकर कोई लेता पुरस्कार तो किसी की होती जयजयकार
अब चलो उठो सब हिलमिल कुछ करें उठे खिलखिला बाल संसार।

लोकवाणी

'सुसंभाव्य' अप्रैल 2017 का अंक मिला, आभार! 'पुरोवाक्' आपके सुलझी हुई सोच एवं प्रखर, उदार व्यक्तित्व का परिचायक होता है। जैसे आपने कहा है–''साहित्य का समाज से वही संबंध है, जो आत्मा का शरीर से है, किन्तु आत्मा की तरह साहित्य का नाश कभी नहीं हो सकता है।'' आपके इस कथन से विचारों की साहित्यिक शुद्धता से पाठकों का मन अवश्य जुड़ेगा आह्लादित होकर।

शशिकला झा का गीत, अवधेश कुमार सिन्हा का 'दर्द का रिश्ता' बेहद अच्छे लगे। आलेख 'रोशनी की तलाश' और स्मृति आख्यान 'परख' में 'मैला आंचल का समाज' पाठकीय आस्वाद से भरपूर है। शिवडोयले, कल्पना मनोरमा, देवेन्द्र कु0 मिश्रा की रचनाएँ भी आकर्षित करती हैं। डॉ. अचल भारती की कविता आँखों देखे बयान की तरह लगी। समीक्षाएँ संबंधित संग्रहों का पूरा पढ़ लेने का दावत दे रही है। अंजना वर्मा की कहानी 'दूसरा दृश्य' आज की नारी की मनोदशा, उसके साहस और खुद को साबित करके दुनिया में अपनी पहचान कायम कर लेने की कथा है। जो पति की बेवफाई से टूटकर बिखरने के बजाय जीवन में आगे बढ़ने की सोचती है और संकल्प लेती है। कहानी 'एक सपना एक सच' धुंध से उजालों की ओर कदम बढ़ाते संबंधों की कथा है, जो अच्छी लगी। अन्य कविताएँ, रचनाएँ पठनीय हैं। कुशल संपादन के लिए शुभकामनाएँ!

शुभेच्छु – मंजुला उपाध्याय 'मंजुल' पूर्णियाँ, मो०9431865979

आप द्वारा संपादित पत्रिका 'सुसंभाव्य' लगातार मिल रही है। पत्रिका भेजने के लिए आपका बहुत–बहुत धन्यवाद! पत्रिका की सोच, विचारधारा, दृष्टिकोण और सबकी पेशकारी बहुत सराहणीय है। इसकी जितनी प्रशंसा की जाए, थोड़ी है। अप्रैल 2017 अंक में आपकी संपादकीय, संघर्षशील व्यक्तित्व : एल्बर्ट आइंस्टाइन व रघुवीर सहाय की रचना के साथ सारा मैटर ही बढ़िया और प्रशंसनीय है। हिन्दी भाषा की और पूरी मानवता की सेवा करने के लिए आपको पुनः बधाई! हार्दिक मंगलकामनाओं सहित।

सुदर्शन गार्सा, अम्बाला केन्ट, पंजाब मो० 9896201036

'संस्थापक की कलम से' आलेख संपूर्ण पत्रिका का आईना–जैसा है। आज वैश्विक और बाजारवादी संस्कृति के युग में साहित्य के आलोक से समाज का मार्गदर्शन और मानव मूल्यों की रक्षा करने का आपका प्रयास स्तुत्य तथा नमनीय है। आपने ठीक कहा है कि 'साहित्य का समाज से वही संबंध है, जो आत्मा का शरीर से है।' दोनों एक–दूसरे से खुराक लेते हैं, एक दूसरे को पोसते–प्रोत्साहित करते हैं। इतना ही नहीं, साहित्य सामाजिक, राजनीतिक विसंगतियों पर अंगुली रखने, उन्हें सुधारने की आवश्यकताओं को रेखांकित करने का साहसिक प्रयास भी करता है। समाज से दूर हटा हुआ साहित्य अपना अस्तित्व खो देता है।

श्रीमौसम कुमार ठाकुर का 'भक्ति आंदोलन में हिन्दी कवियों की देन' एक शोध आलेख है, जो साहित्यिक महत्व रखता है। डॉ. छोटेलाल बहरदार द्वारा 'मैला आँचल' में तत्कालीन समाज को बारीकी से देखा–परखा गया है। आंचलिकता को शिल्पी फणीश्वरनाथ रेणु ने अपनी कृतियों को धूल और धूप से सँवारा है। ग्रामीण परिवेश में पले–बढ़े रेणु ने गाँवों को नजदीकी से देखा और पाया कि आजादी के उपरांत उत्तर भारत के गाँव के विकास में सामंतवादी व्यवस्था रोड़े अटका रही है। आंचलिकता या स्थानिकता का अपना महत्व है। फणीश्वरनाथ रेणु पूर्णियाँ में न होते, तो हिन्दी का 'मैला आँचल' जैसा उपन्यास उपलब्ध नहीं होता। आचार्य शिवपूजन सहाय पटना में नहीं होकर मुम्बई जैसे महानगर में होते तो 'देहाती दुनिया' हिन्दी के खाते में नहीं आती। यहाँ यह कहना समीचीन होगा कि क्या 'मैला आँचल' में वर्णित पूर्णियाँ अंचल की ही चादर मैली है? साहित्यकार शिव कुमार मिश्र ने कहा–''वस्तुतः जिस हकीकत को रेणु ने पूर्णियाँ अंचल के संदर्भ में उजागर किया है, वह पूरे हिन्दुस्तान की हकीकत है, जो तमाम आधुनिक प्रगति के, आज भी मूलतः गाँवों का ही महादेश है। यह महज पूर्णियाँ अंचल ही अपने दुःख–दर्द, हर्ष–विषाद आदि के साथ रेणु के कृतित्व में नहीं उभरा है, यह खेत–खलिहानों वाला असली भारतवर्ष है, जो परंपरा से चली आ रही सामंती बेड़ियों में जकड़े लाखों स्त्री, पुरुषों, बच्चों, बूढ़ों और नौजवानों के लिए रेणु के कृतित्व में अपनी ज्वलंत वास्तविकता के साथ प्रत्यक्ष हुआ है।'' संयोग से इसी अंक में श्री जयशंकर शुक्ल का मुंशी प्रेमचंद पर स्मृति आख्यान भी देखा। फणीश्वर नाथ रेणु से पूर्व प्रेमचंद ग्रामीण जीवन के सबसे बड़े कथाकार हैं। परन्तु प्रेमचन्द से रेणु की कहानियाँ अलग दीखती हैं। मूल अंतर रचनादृष्टि का है। प्रेमचंद का ध्यान उपेक्षित और पीड़ित पात्रों के आर्थिक शोषण की ओर गया है। सामंती और महाजनी व्यवस्था के फंदे में फँसी हुई जनता का दारुण स्थिति के चित्रण में उनकी गहरी रुचि है। यहीं रेणु इनसे अलग हटकर सताए हुए शोषित पात्रों की सांस्कृतिक सम्पन्नता, मन की कोमलता और रागात्मकता का मार्मिक चित्रण करते हैं। डॉ. अमर सिंह बधान का आलेख काफी सराहनीय है। यदि हम गाँधी नहीं बन सकते, तो उनके चरण छूने के काबिल ही अपने को बना लें।

सभी कविताएँ, कहानियाँ अच्छी हैं, जो पत्रिका के स्तर को बढ़ाती हैं। मुद्रण संबंधी कुछेक दोष पर ध्यान रखा जाए। 'सुसंभाव्य की पूरी टीम को मेरी अशेष मंगलकामनाएँ।

नरेन्द्र किशोर सिंह
आदर्शनगर, समस्तीपुर, मो0–08969358434

वर्तमान समय में हिन्दी पत्रिकाएँ और साहित्यिक समाचार पत्रों में जहाँ एक तरफ बस साहित्यिक–रचनाधर्मिता की खानापूर्ति हाती है, वहीं 'सुसंभाव्य' पाठकों को साहित्यिक और वैचारिक दृष्टि देने में सफल रही है। पत्रिका की रचनाओं में संपादकीय लिखी गई श्रीदयानन्द जायसवाल की इस बात 'मानवता की रक्षा करना चाहते हैं, तो हमारा प्रथम कर्तव्य हो जाता है कि हमें कला और साहित्य के क्षेत्र में फैलाये जानेवाले विष को खत्म करने का एक मुहिम छेड़ना चाहिए' को आत्मसात किया है।

भीखाजी कामा का जीवन संघर्ष, 'आजादी के आंदोलन में नारी का योगदान', 'क्या हम गाँधी को स्मरण के हकदार हैं' जैसे आलेख ने अतीत कथाचित्रों के द्वारा तत्कालीन राष्ट्रीय संकट को पहचानने और सुलझाने का मार्ग प्रशस्त किया है। साहित्यिक आलेख और कहानियाँ और प्रभावशाली हैं। ग़ज़ल में अभिनय अरुणजी की इस रचना ने विशेष प्रभावित किया–

वो सूरज हैं मगर दिल्ली से वो बाहर नहीं आते।
तरक्की के उजाले इसलिए हर घर नहीं आते।

संपादक ने अपनी संपादकीय में अतीत को वर्तान की आधारशिला कहा है और इस बात को वे चुने हुए आलेखों और कविताओं के माध्यम से सार्थक सिद्ध करने में भी सफल रहे हैं।

अंत में यही कहूँगा–आज साज–सज्जा, आवरण के आकर्षक, उत्कृष्ट आलेखों, कविताओं, कहानियों और समीक्षाओं से भरपूर यह पत्रिका संग्रहणीय है।

–राहुल शिवाय, बेगुसराय (बिहार) मो. 8295409649

'सुसंभाव्य' का अप्रैल 2017 का अंक प्राप्त हुआ। संभाव्य से सुसंभाव्य की यात्रा अत्यन्त सुखकर रही है। पत्रिका अपने तेवर और कलेवर में अंक–दर–अंक निखरती जा रही है। इस हेतु आपके परिश्रम से नमन है। कला, विज्ञान, साहित्य, संस्कृति का अप्रतिम समन्वय इस पत्रिका की खूबी है। साथ ही इसका अखिल भारतीय स्वरूप साहित्यिक समरसता अनुपम उदाहरण प्रस्तुत करता है। जैसा कि आपने संपादकीय में से ही कहा है–' आज सामाजिक, नैतिक मूल्यों का पतन हो रहा है, ऐसे में साहित्य की जिम्मेदारी बढ़ गई है। प्रति पत्रिका का प्रकाशन आज के त्वरित इंटरनेट–इलेक्ट्रॉनिक युग में कितना चुनौतीपूर्ण है, यह हम सब समझ सकते हैं। बावजूद इसके आप भागीरथ यज्ञ में रहत हैं, यह प्रशंसनीय है। आज समाज में साहित्य गंगा का प्रवाह तमाम कुरीतियों का त्राण के लिए नितांत आवश्यक है कि शासन के स्तर पर साहित्य के प्रसार और सहयोग हेतु कोई मुकम्मल और प्रभावी योजना हो। राज–रजवाड़ों के युग में भी साहित्य शासन का मुखापेक्षी था और आज भी कलम का सिपाही लक्ष्मी के अभाव में 'अपना हौसला छोड़ रहा है। रोजगार परक शिक्षा और मूल्यों, संस्कारों के तिरस्कार की प्रवृत्ति ने साहित्य का अनादर किया है। आज प्रेमचंद और टैगोर पढ़ने से नौकरी नहीं मिलती, इसलिए कोई पढ़ भी नहीं रहा; हम–आप जैसे साहित्यकारों की कृतियों को कौन खरीदे। अंग्रेजी के लेखक एक भी अमौलिक उपन्यास लिखकर जीवनभर ग्लेमर में गुज़ारा कर रहे हैं, लेकिन हिन्दी के कलम घिस्सू नितांत आर्थिक विपन्नता में जीवन–यापन कर रहे, साहित्य भी एक प्रकार से एलिट वर्गीय शौक हो गया लगता है।

उषा निगम, मौसम ठाकुर, आकांक्षा यादव, डॉ. जयप्रकाश कर्दम और अमर सिंह बधान के आलेख शोधपरक और विचारोत्तेजक है। ज्योति सिन्हा की कविताएँ अंकुरण की दौर की होने के बावजूद ताज़गी से भरी है।इस संभावनाशील रचनाकार को शुभकामनाएँ। मुंशी प्रेमचंद पर जयशंकर शुक्ल का आलेख अत्यन्त सारगर्भित और जानकारी से भरा है। रेणुजी का मैला आँचल आँचलिक उपन्यासों की श्रेणी में मील का पत्थर है। उसकी परख बखूबी की है डॉ. छोटेलाल बहरदार ने। अंजना वर्मा की कहानी 'दूसरा दृश्य' अंक की हासिल कही जा सकती है। शहरी सह जीवन की चुनौतियाँ, मानवीय संबंधों की पड़ताल आदि आयामों को परत–दर–परत खोलती कहानी अत्यन्त रुचिकर और संप्रेषण में सफल है। अशोक गौतम का व्यंग्य अपने उद्देश्य में सफल है। बुद्धिजीवी वर्ग पर करारा व्यंग्य किया है गौतमजी ने। अंक में शामिल कविताएँ और स्तम्भ भी अपनी प्रस्तुति का लोहा मनवा रहे हैं।

साधुवाद! अत्यन्त समृद्ध अंक के संयोजन के लिए।

सादर–अभिनव अरुण, बनारस, 9415678748

आदरणीय संपादकजी!

सुसंभाव्य का अप्रैल 2017 अंक एक नई धज के साथ प्राप्त हुआ। आपका संपादकीय समय सापेक्ष होने के साथ आपकी सार्थक सोच को भी रेखांकित करता है।

ज्योति सिन्हा, शिव डोयेल, कल्पना, मनोरमा, उर्मिला प्रसाद, अंजनी श्रीवास्तव और भास्कर चौधरी की कविताएँ अच्छी लगीं। अंजना वर्मा और सेफाली कुमार की कहानियाँ प्रभावित करती हैं। शशिकला झा का गीत गुदगुदाता है। रुचि भल्ला की लघुकथा अच्छी लगी। अभिनव अरुण की ग़ज़ल में अच्छी कोशिश करते हुए दिखाई देते हैं। पत्रिका आपकी साहित्यिक प्रतिबद्धता और संपादकीय दृष्टि का जीवन्त दस्तावेज है।

–विज्ञान व्रत, नोएडा 9810224571

कहानी या आलेख 'सुसंभाव्य' में प्रकाशित होतना एक अलग तरह की गौरवानुभूति है; क्योंकि इस साहित्यिक पत्रिका के साहित्यिक और स्वयं लेखक, पाठक जिस तरह खुलकर प्रतिक्रिया करते हैं, वह अन्य पत्रिकाओं में लेखन के प्रकाशन पर नहीं मिलती और सुधी पाठकों की प्रतिक्रियाएँ ही लेखक की पूँजी होती है, भले ही वह तीखी ही हों।

–मनोरंजन सहाय सक्सेना, जयपुर, 9460302770

'सुसंभाव्य' का अप्रैल अंक वास्तव में साहित्य और संस्कृति की सृजनशीलता का अप्रतिम उदाहरण है। पहली बार पत्रिका को आद्यान्त परायण किया। साप्ताहिक हिन्दुस्तान और धर्मयुग के लेखन की प्रतीति भी हुई। कहानियाँ और कविताएँ शैली की विविधता के साथ–साथ युगीन संदर्भ को रूपायित करने में समर्थ हैं और सृजन की रूहानियत रचनाकारों की कुशलता का भी परिचायक है। रोहिताश्व अस्थाना को एक लंबे अरसे के पश्चात् पढ़ने का अवसर मिला आकांक्षा यादव और अमर सिंह बधान की रचनाएँ इस अंक की उपलब्धि कही जा सकती है, जिसमें वैचारिक शुष्कता के मध्य एक दिशा निर्देशक प्रवाहमानता है। रचनाकारों की फोटो को संलग्न करें, तो पत्रिका निखर उठेगी। कविताओं के चयन में कथ्य और शिल्प के संग भाव गांभीर्य का भी ध्यान रखें ताकि पद्यात्मकता के क्षेत्र में रागात्मक अनुभूतियों का न लोप हो जाए। शेष आपका भगीरथ प्रयास साहसिक है। अंक की त्रैमासिक निरंतरता बरकरार रखें। सादर अभिनंदन एवं हार्दिक शुभकामनाएँ। धन्यवाद!

–गोरेलाल दास, मसदी, सुलतानगंज, भागलपुर (बिहार)

आपके द्वारा प्रेषित सुसंभाव्य की प्रति प्राप्त हुई ।पाकर अत्यन्त सुखद अनुभूति हुई। वास्तव में प्रगाढ़ संभावनाओं के मीठे सृजनात्मक संकल्पों को गहराई से सिद्ध करती हुई यह पत्रिका अपने नाम को ही सार्थकता प्रदान करती हुई प्रतीत हुई। आज सब भारत से हीं भारतीयता विलुप्त प्राय हो रही है, अपने ही वनत में गरिमामयी हिन्दी और हिन्दी साहित्य को बड़ी ही बेरूखी से उठाकर हासिये पर रख दिया गया है ऐसे में आपका अपनी संस्कृति और अपने साहित्य के लिए अनुराग व समर्पन प्रशंसनीय, अनुकरणीय, अभिनन्दनीय है। सधी हुई सम्पादकीय दक्षता से सुशोभित पत्रिका की समस्त रचनाएँ सरस, मनोरंजक, सार्थक तथा प्रभावी है। इसके लिए हृदय तल से बहुत–बहुत धन्यवाद ।
परमात्मा आपको सदैव प्रसन्न और आयुष– सम्पन्न रखें। सुसंभाव्य निरंतर साहित्य के नये आयाम गढ़ता, नये सोपान चढ़ता लोक हृदय की चेतना के हर तल पर विराजित हो ।इन्ही मंगलकामनाओं के साथ।
कंचन पाठक, गोमतीनगर, मो० 8969809870

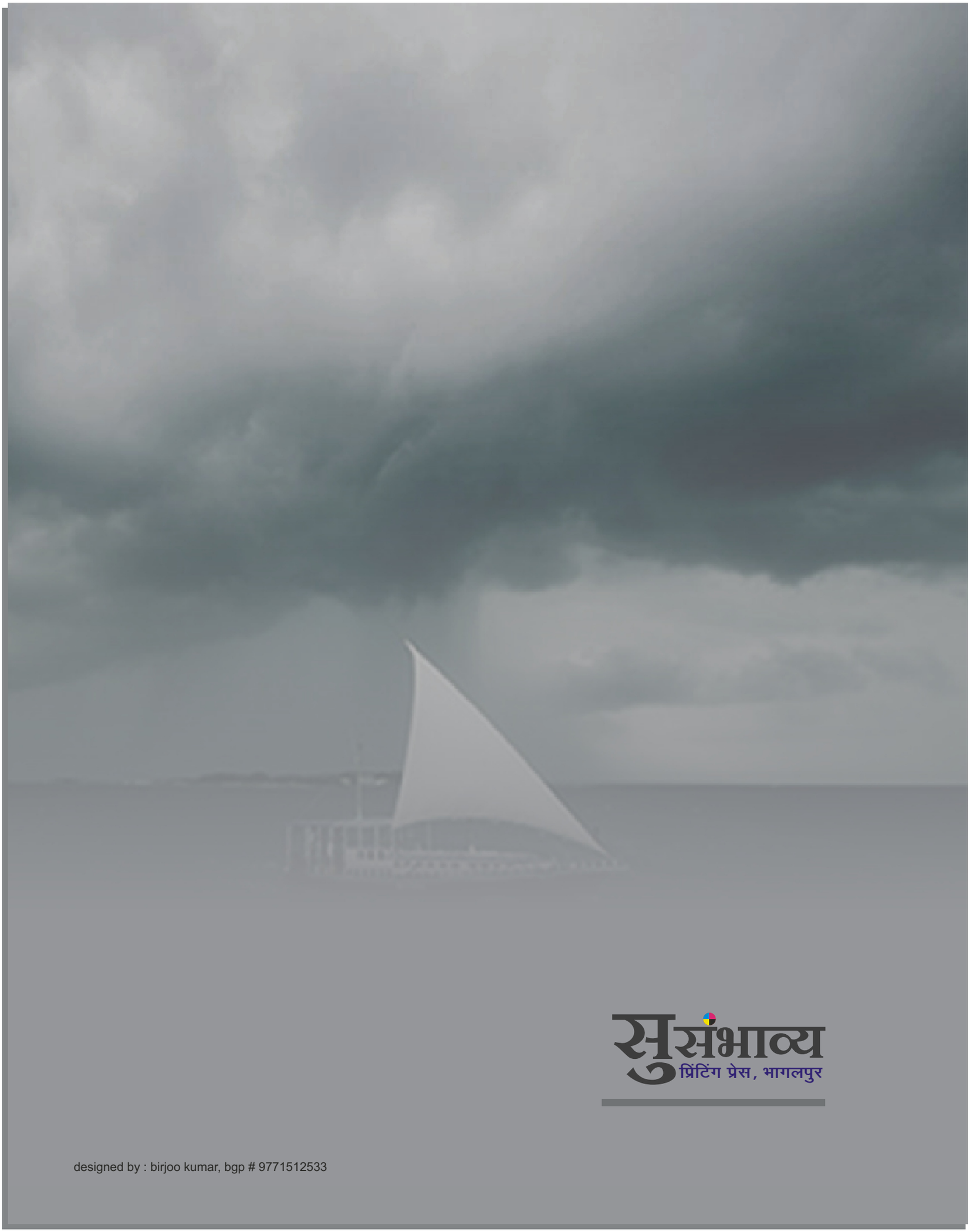

सुसंभाव्य
प्रिंटिंग प्रेस, भागलपुर

designed by : birjoo kumar, bgp # 9771512533